श्रीअरविन्द कर्मधारा

मार्च- अप्रैल २०२२, श्रीअरविन्द - १५०वीं जयंती

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम
दिल्ली शाखा का मुखपत्र

मार्च-अप्रैल, 2022
वर्ष 52, अंक 2

संस्थापक
श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन
अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति
सुश्री तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय
श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा
श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट
(www.sriaurobindoashram.net)

फिर से पांडिचेरी

माताजी दूसरी बार २४ अप्रैल, १९२० को पांडिचेरी स्थायी रूप से आयी थीं। १९३७ में उन्होंने कहा था कि उनका यह लौटना विरोधी शक्तियों के ऊपर विजय का निश्चित चिह्न था। .. २४ नवम्बर, १९२६ को माताजी और श्रीअरविन्द को सिद्धि प्राप्त हुई। इसी वर्ष के अंत में माताजी ने चन्दन नगर की एक पत्रिका के लिये एक पत्र लिखा था जिसमें यह बताया था कि वे अपने लक्ष्य बारे में सचेतन कैसे हुई: "मुझे धरती पर जो कार्य करना है उसके बारे में मैं कब और कैसे सचेतन हुई और मैं श्रीअरविन्द से कब और कैसे मिली? यह कहना मुश्किल है कि मुझे अपने जीवन के लक्ष्य का ज्ञान कब हुआ। ऐसा लगता है मानों में उसे लेकर ही पैदा हुई थी और मन और मस्तिष्क के विकास के साथ-साथ इस चेतना की यथार्थता और पूर्णता भी बढ़ती गयी। ११ और १३ वर्ष की उम्र के बीच मुझे कुछ चैत्य और आध्यात्मिक अनुभूतियों ने न केवल भगवान् की उपस्थिति का ज्ञान कराया, बल्कि यह भी बतलाया कि भगवान् से मिलना संभव है और उन्हें पूरी तरह चेतना और क्रिया में प्रकट किया जा सकता है और धरती पर एक दिव्य जीवन में अभिव्यक्त किया जा सकता है। इसके साथ-ही-साथ उसकी उपलब्धि के लिये मुझे क्रियात्मक साधना भी बतलायी गयी। ... उसके बाद जैसे-जैसे आंतरिक और बाह्य विकास होता गया, उनमें से एक के साथ चैत्य और आध्यात्मिक संबंध अधिकाधिक स्पष्ट और अर्थपूर्ण होता गया... जैसे ही मैंने श्रीअरविन्द को देखा, मैं पहचान गयी कि ये तो वही हैं जिन्हें मैं "कृष्ण" कहा करती थी।

माताजी ने कहा है कि श्रीअरविन्द के बिना उनका अस्तित्व ही नहीं है और श्रीअरविन्द उनके बिना अनअभिव्यक्त हैं।

9 मार्च, 1914

हे प्रभु! जो लोग तुममें और तुम्हारे लिए ही जीवन जीते हैं

वे बदल सकते हैं अपना भौतिक परिवेश, अपनी आदतें, वातावरण, "परिस्थिति",

किंतु वे सर्वत्र ही पाते हैं वही वायुमंडल;

वे अपने अंदर, अपने विचारों में जो निरंतर तुम पर ही स्थिर होते हैं,

उसी वायुमंडल का वहन करते हैं| सर्वत्र वे महसूस करते हैं, अपने घर जैसा

क्योंकि हर जगह वे होते हैं तुम्हारे ही गृह में | ....

हे नाथ, मेरे प्रिय स्वामी, इस नाव पर जो कि मुझे शांति के अद्भुत स्थान, तुम्हारे सम्मान में

अवचेतन निष्क्रियता की तरंगों पर यात्रा करता एक मंदिर प्रतीत होता है,

यह मैं सदैव अनुभव करती हूँ और तुम्हारी दिव्य उपस्थिति की चेतना के प्रति जागृत होती हूँ |

हे अवर्णनीय सत्यता, भाग्यवान था वह दिन जब मैंने तुम्हें जाना था|

सभी दिवसों में वह दिवस होगा और भी अधिक भाग्यवान,

जब समस्त पृथ्वी अंततः जागृत होकर तुम्हें जान पाएगी

और केवल तुम्हारे लिए ही जाज्वल्यमान होगी|

-श्रीमाँ

अमित शाह

सत्यमेव जयते

गृह मंत्री एवं सहकारिता मंत्री
भारत सरकार

सुश्री तारा जौहर जी,

यह अत्यंत हर्ष का विषय है कि भारत के महामहिम राष्ट्रपति महोदय द्वारा आपके लोक प्रेरक जीवन एवं नई पीढ़ी के दिग्दर्शन के संदर्भ में आपके उल्लेखनीय योगदान हेतु आपको **'साहित्य एवं शिक्षा'** के क्षेत्र में **'पद्म श्री'** से सम्मानित किया है। आपने अपना जीवन श्री अरबिंदो की शिक्षाओं के प्रचार-प्रसार और जरूरतमंदो के उत्थान के लिए समर्पित किया है। आपके मौलिक योगदान को सदैव स्मरण रखा जायेगा।

पद्म पुरस्कारों की अपनी एक सुदीर्घ परंपरा रही है। प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी के नेतृत्व में देश के पद्म पुरस्कार अब उनको मिलते हैं, जो निष्काम कर्मयोगी हैं। आज समाजसेवा के लिए समर्पित व अपनी असाधारण उपलब्धियों से राष्ट्र का मान बढ़ाने वाले विभूतियों को पद्म पुरस्कार से सम्मानित करने की जो अनूठी परंपरा कायम हुई है, वह अद्भुत है।

विशिष्ट कृतित्व को सम्मानित करने की प्रक्रिया के लोकतंत्रीकरण के परिणामस्वरूप अब यह पुरस्कार राज-सम्मान का ही नहीं, अपितु लोक-मान्यता का भी प्रतीक बन गया है।

आपको इस गौरवपूर्ण पुरस्कार के लिए हृदय की अतल गहराइयों से बधाई और शुभकामनाएँ। आप अपनी संकल्प यात्रा पर निरंतर गतिमान रहें। मेरा विश्वास है कि आपका कार्य प्रकाश स्तम्भ बनकर नई पीढ़ी का मार्ग प्रशस्त एवं प्रकाशित करेगा। ईश्वर आपको उत्तम स्वास्थ्य एवं दीर्घायु प्रदान करें।

सादर,

आपका,

(अमित शाह)

सुश्री तारा जौहर,
श्री अरबिंदो आश्रम - दिल्ली शाखा, गेट नंबर 6,
सर्वोदय एन्क्लेव के पास , ऑफ श्री अरबिंदो मार्ग
नई दिल्ली - 110 016

कार्यालय : गृह मंत्रालय, नॉर्थ ब्लाक, नई दिल्ली-110001
दूरभाष : 23092462, 23094686, फैक्स : 23094221
ई-मेल : hm@nic.in

विषय-सूची

- 9 मार्च, 1914 — 2
- पद्मश्री — 3
- संपादकीय — 5
- आध्यात्मिक जीवन के मार्ग में कठिनाइयाँ — 7
- भौतिक आवश्यकताएँ व अनुशासन — 12
- 'कृष्ण' का भाव — 13
- प्रगति — 15
- माताजी के संदेश — 17
- श्री अरविन्द के वचनों की व्याख्या — 18
- श्री अरविंद की कवितायें - अनुवादक रामधारी सिंह दिनकर — 21
- श्री अरविंद के पद्य – अनुवाद – विमला गुप्त — 28
- श्रीमाँ की प्रार्थनाओं से उठती अभीप्सा-सुगंध — 29
- सावित्री — 32
- साहस — 37
- श्रीअरविंद का रचना कर्म - पद्य — 39
- आश्रम गतिविधियाँ — 49

संपादकीय

एक निर्धन विद्वान व्यक्ति चलते चलते पड़ोसी राज्य में पहुँचा। संयोग से उस दिन वहाँ हस्तिपटबंधन समारोह था जिसमें एक हाथी की सूंड में माला देकर नगर में घुमाया जाता था। वह जिसके गले में माला डाल देता था उसे पाँच वर्ष के लिए वहाँ का राजा बना दिया जाता था।

वह व्यक्ति भी समारोह देखने लगा। हाथी ने उसके ही गले में माला डाल दी। सभी ने जय जयकार करते हुए उसे पाँच वर्ष के लिए वहाँ का राजा घोषित कर दिया।

राजपुरोहित ने उसका राजतिलक किया और वहाँ के नियम बताते हुए कहा कि आपको केवल पाँच वर्ष के लिए राजा बनाया जा रहा है। पाँच वर्ष पूर्ण होते ही आपको मगरमच्छों व घड़ियालों से युक्त नदी में छोड़ दिया जाएगा।

यदि आप में ताकत होगी तो आप उनका मुकाबला करके नदी के पार वाले गाँव में पहुँच सकते हो। आप को वापिस इस नगर में आने नहीं दिया जाएगा।

वह निर्धन विद्वान व्यक्ति पहले तो सिहर गया पर उसने सोचा कि अभी तो पाँच वर्ष का समय है। कोई उपाय तो निकल ही जाएगा।

उसने पाँच वर्ष तक विद्वत्तापूर्वक राज्य किया। राज्य की संचालन प्रक्रिया को पूरे मनोयोग से निभाया और इस प्रकार केवल राज्य पर ही नहीं लोगों के दिलों पर भी राज्य करने लगा। जनता ने ऐसा प्रजावत्सल राजा कभी नहीं देखा था।

पाँच वर्ष पूर्ण हुए। नियमानुसार राजा को फिर से हाथी पर बैठाकर जुलूस निकाला गया।

लोगों की आँखों से आँसुओं की झड़ी लग गई। नदी के तट पर पहुँच कर राजा हाथी से उतरा।

राजपुरोहित ने कहा कि अब आप नदी पार करके दूसरी ओर जा सकते हैं।

अश्रुपूरित विदाई समारोह के बीच उसने कहा कि मैं इस राज्य के नियमों का सम्मान करता हूँ। अब आप मुझे आज्ञा दें और हो सके तो इस निर्मम नियम में बदलाव करने के बारे में सोच विचार करें।

जैसे ही राजा ने नदी की ओर कदम बढाए, लोगों ने अपनी सजल आँखों को ऊपर उठाया। जानते हो वहाँ ऐसा क्या था जिसे देखकर वे खुशी से नाचने लगे....क्यों?

उस नदी पर इस पार से उस पार तक राजा ने पहले ही एक पुल बनवा दिया था। जिस पर राजा शांत भाव से चला जा रहा था, नदी के उस पार वाले सुंदर से गाँव की ओर।.....

क्या ऐसा ही कुछ हमारे साथ भी घटित नहीं हो रहा.....?

हमें भी कुछ समय के लिए श्वांसों की सम्पत्ति देकर इस अमूल्य जीवन की बागडोर सौंपी गई है।

समय पूरा होते ही हमें यह राज्य छोड़ कर भवसागर के उस पार वाले लोक में जाना है जहां से हमें फिर से इस राज्य में आने की आज्ञा नहीं है।

यदि हमने धर्म ध्यान का पुल नहीं बनाया तो हम मगरमच्छों व घड़ियालों से युक्त नरकों में डाल दिए जाएंगे और उनका ग्रास बन जाएंगे और अगर हम शांत भाव से भवसागर के उस पार वाले लोक में जाना चाहते हैं तो अभी से वह पुल बनाने की शुरूआत कर देनी चाहिए क्योंकि आयु काल पूरा होने के बाद जाना तो निश्चित ही है.....

अब हमारे सामने प्रश्न आता है कि आखिर यह पुल कैसे बनेगा ? कोई भी निर्माण करना हो तो उसके लिए जो आवश्यक चीज है वह है कर्म। कर्म करना जीवन का एक बहुत ही सार्थक रूप है, शैली है।किन्तु यह कर्म होना चाहिए हमारे अंतरात्मा के निर्देशन में । अंतरात्मा कहाँ है ? हम अंतरात्मा को कैसे पाएं? ऐसी कुछ बातें हमारे मन में उत्पन्न होती हैं, लेकिन हम भाग्यशाली हैं जिन्हें मन में आने वाले हर प्रश्न का उत्तर पाने का रास्ता या स्रोत उपलब्ध है, और वह स्रोत है श्रीमाँ और श्री अरविंद का साहित्य । जब हम सर्वांगीण योग के पथ पर चलने के लिए श्रीमाँ की ओर देखते हैं, श्री अरविंद के साहित्य को पढ़ते हैं तो हम पाते हैं कि उन्होंने हमें बताया है इस शारीरिक, प्राणिक और मानसिक प्रकृति की तरह हमारी चैत्य प्रकृति भी होती है। इसीलिए श्रीमाँ कहती हैं कि चैत्य पुरुष का संपर्क एक नया जन्म है। इसकी

प्राप्ति के साथ ही जीवन का रूपांतरण होने लगता है और व्यक्ति जीवन के शिखरों को नापता हुआ सदैव आगे बढ़ता है ।भौतिक कामनाओं के कोलाहल और आवेगों के अंधे प्रभाव में बहते, अशांत जीवन में हम प्रायः इसे देख नहीं पाते किंतु यह सर्वत्र प्रकट है। श्रीमाँ कहती हैं कि 'मैं इसे छुपा हुआ नहीं पाती, मैं देखती हूं कि यह सर्वत्र प्रकट है, सब समय प्रत्येक क्षण प्रत्येक वस्तु में प्रकट है। श्री अरविंद के अनुसार भगवान की इस नन्हीं सी चिंगारी का वास सभी में है' ।इसे और स्पष्ट करते हुए माताजी ने कहा कि 'चैत्य पुरुष बिजली की मशीन (जनरेटर) और बिजली की बत्ती के तार की जैसी एक चीज है..., भगवान तो हैं मशीन और यह भौतिक शरीर है बत्ती। अतएव चैत्य पुरुष का कार्य है इन दोनों को जोड़ देना। चैत्य पुरुष की यात्रा जन्मांतरों तक चलती रहती है। वह हमारी मृत्यु के साथ समाप्त नहीं होता। केवल चैत्य तत्व ही मृत्यु के बाद भी रहता है बाकी सब चीजें विलीन हो जाती हैं । अतएव चैत्य पुरुष से संपर्क का तात्पर्य है हमारे अपने अंतर्निहित देवत्व से संपर्क। जीवन के दिव्यतम की प्राप्ति के लिए यह एक ज्योति द्वार है। इसका उद्देश्य है जड़ तत्व को धीरे-धीरे भागवत चेतना की ओर, भागवत उपस्थिति के प्रति, स्वयं भगवान के प्रति जागृत करना।

साथियों, भागवत चेतना को यदि हम नदी के उस पार वाला गाँव मान लें तो इस पार की अवधि समाप्त होने के दौरान ही हमें यहाँ से वहाँ तक एक ऐसे पुल का निर्माण तो करना ही होगा जो यहाँ से जाते समय सुरक्षित रूप में उस उस पार पहुँचा सके।

अतः जीवन के कर्मों में हमें सचेतन रूप से कर्म योग का मार्ग चुनना चाहिए श्री मां कहती हैं कोई भी काम कर्म योग बन सकता है, बस हमें इतना ध्यान रखना है कि हमारे द्वारा किया जाने वाला कर्म हमारे अंतरात्मा के निर्देशन में किया जाए ताकि हमारा काम करते समय हमारी मनोवृति ईश्वर के प्रति समर्पित हो। हम या केवल हमारा काम ही नहीं बल्कि काम का परिणाम अथवा प्रतिफल भी ईश्वर को ही समर्पित होने वाली मनोवृति के साथ किया जाने वाला कर्म ही कर्म योग की श्रेणी में गिना जा सकता है और निरंतर कर्म योग के पथ पर चलकर ही हम अपने लिए उस पुल का निर्माण कर पाते हैं या कर सकते हैं जो भौतिक जीवन की अवधि के समाप्त होने पर हमें ईश्वर के संपर्क में जाने का रास्ता प्रदान कर सकता है। हमारे संपूर्ण जीवन और हमारे समग्र कार्य करते समय हमें ध्यान रखना होगा कि हमें सदा भगवान द्वारा ही शासित होना है । श्रीमाँ कहती हैं कि ऐसा करने के लिए पहली चीज है निरंतर अभीप्सा करना, दूसरी है अपने अंदर एक प्रकार की निश्चलता बनाना और बाह्य कर्म से इस निश्चलता में पीछे हटना और सुनने के लिए एक प्रकार की प्रतीक्षा करना। किसी ध्वनि को सुनने के लिए नहीं बल्कि अंतरात्मा के द्वारा उच्चतर चेतना का आध्यात्मिक संवेदन और निर्देशन प्राप्त करने के लिए।

आइये हम सचेतन रूप से अपने अंतरात्मा के निर्देशानुसार अपने कर्म को कर्मयोग का स्वरूप देने का संकल्प करें। यह काम उच्च चेतना में रहते हुए ही हो सकता है। श्रीमाँ से प्रार्थना है कि वे अपनी कृपा और संरक्षण हमें प्रदान करती रहें और उनके मार्ग पर चलते रहने की प्रेरणा हमारे हृदय में बनी रहे। इसी शुभकामना के साथ आपके सामने ला रही हूं 'श्रीअरविंद कर्मधारा' का नया अंक। ये श्री अरविंद की 150 वीं जन्म- जयंती- वर्ष है और हमें स्मरण रखना है कि प्रभु के प्रति हमारा समर्पण हमारी आस्था और विश्वास, हमारी श्रद्धा दृढ़ से दृढ़तर होती रहे।

शुभेच्छा के साथ
- अपर्णा

आध्यात्मिक जीवन के मार्ग में कठिनाइयाँ

एक साधक को दिए इस उत्तर में श्रीअरविन्द ने आध्यात्मिक जीवन में आती बाधाओं का बहुत बारीकी से विश्लेषण किया है। यह लेख अवश्य ही साधकों के लिए मार्ग-प्रदर्शक व प्रेरक होगा |

तुम्हारे आध्यात्मिक जीवन और तुम्हारी कठिनाइयों के विषय में दो या तीन ऐसी बातें हैं जिन्हे बताना मैं आवश्यक समझता हूँ।

प्रथम तो मैं यह चाहूँगा कि तुम उस विचार से मुक्त हो जाओ कि कठिनाइयों को उत्पन्न करने वाली चीज़ इतनी अधिक तुम्हारी अपनी सत्ता का अंग है कि तुम्हारे लिए आंतरिक जीवन जीना असंभव है। आंतरिक जीवन सदैव संभव होता है यदि प्रकृति में, वह अन्य वस्तुओं से कितनी ही ढँकी क्यों न हो, एक ऐसी दिव्य संभावना विद्यमान हो जिसके द्वारा अंतरात्मा अपने को अभिव्यक्त कर सके तथा मन और प्राण में अपने सच्चे स्वरूप का भगवान के एक अंश का निर्माण कर सके। तुम्हारे अंदर यह दिव्य संभावना विशिष्ट और आसाधारण मात्रा में विद्यमान है। तुम्हारे भीतर सहज प्रकाश, सहज दृष्टि, सामंजस्य और सर्जनशील सौंदर्य से युक्त एक ऐसी आंतरिक-सत्ता है जो कि प्रत्येक समय प्राणिक प्रकृति में घिरे हुए बादलों को तितर-बितर कर बिना किसी भ्रम के प्रकट करने में समर्थ हुई। यह वही वस्तु है जिसे माताजी ने तुम्हारे अंदर विकसित करने तथा सामने लाने की सदा ही चेष्टा की है। जब मनुष्य में वह चीज होती है तो निराशा का कोई आधार, असंभावना की किसी चर्चा का कोई उचित कारण नहीं रहता। यदि तुम एक बार दृढ़तापूर्वक इसे अपनी सच्ची आत्मा के रूप में स्वीकार कर सको,(जैसी कि वस्तुत: यह है, क्योंकि आंतरिक सत्ता तुम्हारी सच्ची आत्मा है और बाह्य सत्ता, जिसके कारण कठिनाइयाँ आती हैं, सदैव ऐसी ही कोई वस्तु है जिसे अर्जित किया जाता है, जो अस्थायी होती है तथा बदली जा सकती है), और यदि तुम इसके विकास को अपने जीवन का स्थायी और दृढ़ लक्ष्य बना सको तो मार्ग स्पष्ट हो जाएगा और तुम्हारा आध्यात्मिक भविष्य प्रबल संभावना ही नहीं किंतु एक निश्चित वस्तु हो जाएगा।

ऐसा बहुधा होता है कि जब प्रकृति में इस प्रकार की असाधारण शक्ति होती है, तो बाह्य सत्ता में ऐसा कोई विरोधी तत्व पाया जाता है जो इसे बिलकुल विरोधी प्रभाव की ओर उदघाटित कर देता है। यही आध्यात्मिक जीवन के प्रयास को बहुधा कठिन संघर्ष का रूप दे देता है: किंतु इस तरह के विरोध का अस्तित्व, अति उग्र रूप में होने पर भी उस जीवन को असंभव नहीं बनाता। शंका, संघर्ष, प्रयत्न और असफलताएँ, भूल-चूक, सुखमय और दु:खमय या अच्छी और बुरी परिस्थितियाँ, प्रकाश और अंधकार की स्थितियाँ, ये सब मनुष्यों की सामान्य नियति है। ये योग द्वारा या पूर्णता के लिए किए गए प्रयत्न द्वारा उत्पन्न नहीं होती: योग में केवल व्यक्ति इनका बिना सोच-समझे अनुभव करने के स्थान पर उनकी क्रियाओं और उनके कारणों के विषय में सचेतन हो जाता है, और अंततः उनसे बाहर निकलकर अधिक स्पष्ट और सुखमय चेतना में पहुँचने का मार्ग बना लेता है। साधारण जीवन अंत तक कष्टों और संघर्षों की परंपरा रूप होता है, परंतु योग का साधक कष्ट और संघर्ष से निकलकर मूलभूत आत्म-प्रसाद के धरातल पर आ जाता है जिसे सतही विक्षोभ तब भी छू सकते हैं पर नष्ट नहीं कर सकते, और, अंत में सारा विक्षोभ बिलकुल समाप्त हो जाता है। यहाँ तक कि चेतना की उन भयानक परिस्थितियों का वह अनुभव जिससे तुम चौंक गए हो, जिसमें तुम अपनी सच्ची इच्छा के विरुद्ध बातें कहते और करते हो, उसमें भी निराशा का कोई कारण नहीं। यह एक या अन्य रूप में उन सबका सामान्य अनुभव है जो अपनी साधारण प्रकृति से ऊपर उठने की चेष्टा करते हैं। केवल उन लोगों को ही नहीं जो योगसाधना करते हैं पर धार्मिक व्यक्ति और वे भी जो केवल नैतिक नियंत्रण और आत्मोन्नति की खोज करते हैं, इस कठिनाई का सामना करना होता है। और फिर यहाँ भी, योग, या पूर्णता के लिए किया जानेवाला प्रयत्न ही इन अवस्थाओं को उत्पन्न नहीं करता; मानव प्रकृति में एवं प्रत्येक मानव में ऐसे परस्पर विरोधी तत्व होते हैं जो उससे इस तरह के काम करवाते हैं जिन्हे श्रेष्ठतर मन अस्वीकृत करता

है। ऐसा प्रत्येक व्यक्ति के साथ, अत्यंत साधारण जीवन जीनेवाले अतिसाधारण मनुष्यों के साथ भी होता है। यह हमारे मनों के सामने प्रत्यक्ष और स्पष्ट तब होता है जब हम अपने सामान्य बाह्य 'स्व' से ऊपर उठने की चेष्टा करते हैं, क्योंकि तब हम यह देख सकते हैं कि निम्नतर तत्वों से ही उच्चतर संकल्प के विरुद्ध जानबूझ कर विद्रोह करवाया जाता है। तब कुछ समय के लिए प्रकृति में एक विभाजन जैसा प्रतीत होता है, क्योंकि सच्ची सत्ता और उसे सहारा देने वाली सब चीज़ें पीछे हट जाती हैं और इन निम्नतर तत्वों से अलग हो जाती हैं। सच्ची सत्ता एक बार तो प्रकृति के क्षेत्र पर अधिकार कर लेती है, दूसरे ही समय विरोधी शक्ति द्वारा प्रयुक्त होकर निम्नतर प्रकृति इसे पीछे धकेलकर ज़मीन पर कब्ज़ा कर लेती है, और इस बात को हम अब देखने लगते हैं जब कि पहले वस्तु होती थी किंतु उसके घटने का स्वरूप हमारे सामने स्पष्ट नहीं होता था। यदि व्यक्ति में प्रगति का दृढ़ संकल्प है तो वह इस विभाजन को पार कर जाता है और उस संकल्प के चारों ओर एकीकृत प्रकृति में अन्य कठिनाइयाँ तो आ सकती हैं, पर इस प्रकार की विसंगति और संघर्ष लुप्त हो जाएँगे। मैंने इस विषय पर इतना अधिक इसलिए लिखा है कि तुम्हें यह गलत ख्याल दिया गया था कि योग ही इस संघर्ष को उत्पन्न करता है और यह भी कि प्रकृति में परस्पर विरोध या विभाजन लक्ष्य तक पहुँचने की अक्षमता या असंभावना का लक्षण है। दोनों विचार बिलकुल गलत हैं और यदि तुम अपनी चेतना में से उनका पूर्ण रूप से परित्याग कर दो, तो चीज़ें अधिक सरल हो जाएँगी ।

पर यह सच है कि अन्य लोगों कि तरह तुम्हारे दृष्टांत में भी इस परस्पर विरोध को स्नायविक भागों की उस आनुवंशिक दुर्बलता ने एक प्रकार की विशेष एवं अत्यंत अशांति उत्पन्न करनेवाली तीव्रता प्रदान की है जो तुम्हारे अंदर विषाद, उदासी, बेचैनी और अपने को घोर यंत्रणा देनेवाले अंधकार के दौरों के रूप में प्रकट हुई है तथा जिसने तुम्हारे जीवन को बेस्वाद बना दिया है। तुम्हारी भूल यह है कि तुम सोचते हो यह ऐसी कोई वस्तु है जिससे तुम बँधे हुए हो और बच नहीं सकते, एक ऐसा भाग्य है जो तुम्हारी प्रकृति के आध्यात्मिक परिवर्तन को असंभव बना देता है। मैंने ऐसे अन्य परिवार भी देखे हैं जो इस प्रकार की आनुवंशिक स्नायविक दुर्बलता से पीड़ित थे साथ ही जिनमें बहुधा बौद्धिक एवं कलात्मक क्षमता या आध्यात्मिक संभावनाओं के असाधारण गुण भी थे। हो सकता है कि 'क्ष' जैसे एक या दो व्यक्तियों ने इससे हार मान ली हो, पर अन्य लोग कभी-कभी तीव्र विक्षोभ के बाद इस दुर्बलता से उत्पन्न व्यग्रताओं को जीत पाए या वह लुप्त हो गई अथवा इसने कोई ऐसा गौण या अहानिकर रूप ले लिया जिसने जीवन और उसकी क्षमताओं के विकास में कोई हस्तक्षेप नहीं किया। तो फिर तुम्हारे अंदर यह निराशा या बिना ही किसी कारण यह धारणा क्यों कि तुम बदल नहीं सकते और तुम्हारे अंदर यह चीज़ हमेशा बनी रहेगी? यह निराशा, यह विरोधी धारणा ही तुम्हारे लिए यथार्थ खतरे की बात है; यह तुम्हें एक शांत और स्थिर दृढ़ निश्चय और एक स्थायी प्रभावशाली प्रयत्न करने से रोकती है; इसके कारण ही अधिक अंधकारपूर्ण अवस्था लौटकर तुम्हें झुकने के लिए बाध्य करती है तथा उस विरोधी बाह्य शक्ति को अंदर आने देती है जो तुम्हारे साथ खिलवाड़ करने और अपनी मनमानी करने के लिए इस दोष का लाभ उठाती है। यह मिथ्या विचार ही आधी से अधिक कठिनाई उत्पन्न करता है।

इसका कोई यथार्थ कारण नहीं कि अन्य अनेक लोगों की तरह तुम अपनी बाह्य सत्ता की इस त्रुटि पर विजय क्यों न प्राप्त करो। तुम्हारी प्राणिक प्रकृति का केवल एक भाग ही इससे प्रभावित है, यद्यपि यही प्राय: शेष भाग को आच्छादित कर लेता है; तुम्हारी सत्ता के अन्य भागों को सरलता से दिव्य संभावना का उचित यंत्र बनाया जा सकता है जिसके विषय में मैंने कहा है| विशेषकर, तुम्हारे अंदर स्पष्ट और सूक्ष्म बुद्धि है जिसका सही ढंग से उपयोग करने पर वह प्रकाश का एक तैयार यंत्र बन जाती है और इस प्राणिक दोष पर विजय पाने में तुम्हारे लिए बड़ी उपयोगी हो सकती है। और, यह दिव्य संभावना, तुम्हारी अंतर सत्ता का यह सत्य, यदि तुम इसे स्वीकार करो तो, स्वयं ही, तुम्हारी मुक्ति एवं तुम्हारी प्रकृति के परिवर्तन को अवश्यंभावी बना सकता है।

अपने अंदर इस दिव्य संभावना को स्वीकार करो; अपनी आंतरिक सत्ता में और अपनी आध्यात्मिक नियति में

श्रद्धा रखो। भगवान के अंश के रूप में इसके विकास को अपने जीवन का लक्ष्य बनाओ,- क्योंकि जीवन में एक महान और गंभीर लक्ष्य इस प्रकार की विचलित करने या असमर्थ बनानेवाली स्नायविक दुर्बलता से छुटकारा पाने के लिए एक अत्यधिक शक्तिशाली सहायक वस्तु है; इससे दृढ़ता, संतुलन, समग्र सत्ता को एक प्रबल सहारा तथा संकल्प को कार्य करने के लिए एक बलशाली कारण प्राप्त होता है। हम जो सहायता दे सकते हैं उसके विरुद्ध अविश्वास, निराशा या निराधार विद्रोह द्वारा अपने को बंद किए बिना उसे स्वीकार करो। इस समय तुम नहीं जीत सकते क्योंकि तुमने अपने अंदर एक श्रद्धा, एक लक्ष्य, एक दृढ़ विश्वास स्थिर नहीं किया; अंधकारमयी वृत्ति तुम्हारी सारी चेतना को आच्छादित करने में समर्थ हो गई है। किंतु यदि तुमने इस श्रद्धा को अपने अंदर स्थिर कर लिया और इस पर अडिग रह सकते हो तो यह बादल अधिक समय के लिए स्थिर नहीं रह सकेगा; आंतरिक सत्ता तुम्हारी सहायता के लिए आ सकेगी। तुम्हारी श्रेष्ठतर सत्ता भी सतह पर रह सकेगी, तुम्हें प्रकाश के प्रति खुला रख सकेगी और अंतरात्मा के लिए आंतरिक आधार को सुरक्षित कर सकेगी चाहे बाह्य सत्ता आंशिक रूप से आच्छादित या अस्तव्यस्त ही क्यों न हो। जब ऐसा होगा, तब यह समझो कि विजय हो चुकी है और प्राणिक दुर्बलता का पूर्ण निर्वासन केवल थोड़े से ही धैर्य की बात रह जाती है।

तुमने जो प्रश्न पूछे हैं उनका मैं संक्षेप से जवाब दूँगा।

1. अपने आपको ठीक करने का तरीका है अपनी प्रकृति को ठीक करना और अपने को अपनी प्राणिक सत्ता और आवेगों का स्वामी बनाना।

2. मानव समाज में तुम्हारी स्थिति अन्य ऐसे बहुत से लोगों जैसी है या हो सकती है जिन्होंने अपने प्रारंभिक जीवन में नाना प्रकार की ज्यादतियाँ की हों और बाद में जाकर के आत्मनियंत्रण प्राप्त किया हो तथा जीवन में अपना योग्य स्थान पा लिया हो। यदि तुम जीवन के विषय में इतने अज्ञानी न होते, तो तुम यह जानते कि तुम्हारा दृष्टान्त अपवाद रूप नहीं है किन्तु इसके विपरीत बहुत सर्वसामान्य है, और यह भी कि बहुतेरे व्यक्तियों ने ऐसे काम किए हैं और आगे जाकर वे उपयोगी नागरिक तथा मानव प्रवृत्ति के विविध विभागों में प्रमुख व्यक्ति भी बने।

3. यदि तुम अपने माता-पिता का ऋण चुकाना और उन भूतकालीन आशाओं को पूरा करना अपना लक्ष्य बनाओ जिनके विषय में तुम कहते थे, तो यह तुम भलीभाँति कर सकते हो। तुम्हें केवल पहले अपने स्वास्थ्य को और मन एवं संकल्प के संतुलन को पुन: प्राप्त कर लेना होगा।

4. तुम्हारे जीवन का लक्ष्य तुम्हारे अपने चुनाव पर निर्भर करता है और उसे प्राप्त करने का तरीका लक्ष्य के स्वरूप पर। और तुम्हारी स्थिति भी वही होगी जैसी तुम उसे बनाओगे। तुम्हें केवल यह करना है कि सबसे पहले स्वास्थ्य-लाभ करो; उसके बाद शांत मन से अपनी क्षमताओं और अभिरुचि के अनुसार अपने जीवन के लक्ष्य का निर्धारण करो। तुम्हारे लिए निश्चय करना मेरा काम नहीं। मैं केवल इस बात का ही निर्देश कर सकता हूँ कि मेरे विचार से तुम्हारे सही लक्ष्य और आदर्श क्या होने चाहिएँ।

बाह्य वस्तुओं के अतिरिक्त दो ऐसे संभावित आदर्श भी हैं जिनका मनुष्य अनुसरण कर सकता है। पहला है साधारण मानव जीवन का सर्वोच्च आदर्श और दूसरा योग का दिव्य आदर्श। (जो बात तुमने अपने पिता से कही लगती है उसे ध्यान में रखते हुए मुझे कहना होगा कि साधारण मानव जीवन का उद्धेश्य महापुरुष बनना नहीं और न ही योग का उद्धेश्य प्रबल विवेकपूर्ण मन तथा सच्चे और विवेकपूर्ण संकल्प का नियंत्रण स्थापित करना, भावप्रधान और प्राणिक तथा भौतिक सत्ता का स्वामी बनना, समस्त सत्ता में सामंजस्य उत्पन्न करना तथा क्षमताओं को विकसित करना, चाहे वे जो भी हों, और जीवन में उन्हें चरितार्थ करना। भारतीय चिंतन की परिभाषा में कहें तो इसका अर्थ है परिशोधित और सात्विक 'बुद्धि' के शासन को स्थापित करना, 'स्वधर्म' को चरितार्थ करते हुए और अपनी क्षमताओं के अनुरूप कर्म करते हुए 'धर्म' का अनुसरण करना, तथा 'बुद्धि' और 'धर्म' के नियंत्रण के अधीन काम और अर्थ को संपादित करना। दूसरी ओर दिव्य जीवन का लक्ष्य है अपने सर्वोच्च 'स्व' के सत्य के साथ या दिव्य प्रकृति के नियम के साथ सामंजस्य लाना, अपनी छोटी या बड़ी उच्च क्षमताओं को खोजना और उन्हें जीवन में सर्वोच्च के प्रति यज्ञ के रूप में या भगवती शक्ति के सच्चे यंत्र के

रूप में चरितार्थ करना। इनमें से पिछले आदर्श के विषय में, संभव है, मैं कभी बाद में लिखूँ। इस समय तो, मैं केवल उन कठिनाइयों के संबंध में ही कुछ कहूँगा जिसे तुम साधारण आदर्श की पूर्ति में अनुभव कर रहे हो।

मन और चरित्र का निर्माण इस आदर्श के अन्तर्गत है और यह सदैव एक ऐसी धीमी और कठिन प्रक्रिया होती है जिसके लिए वर्षों के, कभी-कभी तो जीवन के अधिक श्रेष्ठ भाग के, धैर्यपूर्ण परिश्रम की आवश्यकता होती है। प्राय: प्रत्येक व्यक्ति के मार्ग में जो मुख्य कठिनाई होती है वह है प्राणिक सत्ता की कामनाओं एवं आवेगों को नियंत्रित करने की कठिनाई| तुम्हारी तरह अनेक व्यक्तियों में कुछ प्रबल आवेग लगातार ही आदर्श और विवेक एवं संकल्प की माँग के विरुद्ध भाग-दौड़ करते रहते हैं। इसका कारण प्राय: हमेशा स्वयं प्राणिक सत्ता की कोई निर्बलता होती है; क्योंकि इस निर्बलता के कारण ही वह उच्चतर मन के आदेशों को मानने में अपने को असमर्थ पाती है और इसके स्थान पर प्रकृति की किन्हीं शक्तियों से आए आवेगों की लहरों के अधीन कार्य करने को बाध्य होती है। ये शक्तियाँ वस्तुत: पुरुष के बाहर स्थित होती हैं परंतु अपने इस हिस्से में उन्हें सन्तुष्ट करने और उनकी बात मानने के लिए एक प्रकार की यांत्रिक तत्परता को पाती हैं। यदि कमजोरी का मुख्य स्थान स्नायुतन्त्र में हो तो कठिनाई बढ़ जाती है। तब, युरोपियन लोग जिसे नाड़ी दौर्बल्य (Neurasthenia) की प्रवृत्ति कहते हैं वह हो जाती है और इससे किन्हीं परिस्थितियों में स्नायविक असंतुलन और स्नायविक भंग भी उत्पन्न होते हैं। ऐसा तब होता है जब नस-नाड़ियों पर बहुत तनाव पड़ रहा हो या जब व्यक्ति कामोपभोग या अन्य व्यसनों में अत्यधिक फँसा हुआ हो या कभी-कभी तब भी जब निरोध करनेवाले मानसिक संकल्प और इन व्यसनों के बीच एक अतितीव्र और लंबा संघर्ष चल रहा हो। तुम इसी बीमारी से कष्ट पा रहे हो और यदि तुम इन तथ्यों पर विचार करो तो तुम समझ जाओगे कि पांडिचेरी में तुम्हारा स्वास्थ्य क्यों खराब हो गया था। तुम्हारा स्नायुमण्डल निर्बल था; वह संकल्प का आदेश नहीं मान सकता था और बाह्य प्राणिक शक्तियों की माँग का प्रतिरोध नहीं कर सकता था तथा इस संघर्ष में मन एवं नस-नाड़ियों पर हद से अधिक भार आ पड़ा और तब नाड़ीतंत्र की क्लांति के तीव्र आक्रमण का रूप लेकर उन्होंने जवाब दे दिया। इन कठिनाइयों का यह अर्थ नहीं कि तुम सफल नहीं हो सकते और अपनी नस-नाड़ियों और प्राणिक सत्ता पर नियंत्रण नहीं प्राप्त कर सकते। तुम्हें इसके विषय में किन्हीं मिथ्या एवं दूषित विचारों को प्रश्रय दिए बिना केवल इस बात को ठीक ढंग से समझना होगा और सही साधनों का प्रयोग करना होगा। इसके लिए आवश्यकता है शांत मन और शांत संकल्प की, धैर्य के साथ अटल रहकर उत्तेजना या निरुत्साह के वशवर्ती होने से इनकार करने की, किन्तु सत्ता में आवश्यक परिवर्तन लाने के लिए शांत आग्रह रखने की। इस प्रकार का एक अचंचल संकल्प अंततोगत्वा निष्फल नहीं हो सकता। इसका प्रभाव अवश्यंभावी है। संकल्प शक्ति को पहले तो इसका जागृत अवस्था में अस्वीकार करना चाहिए, केवल प्राणिक सत्ता की अभ्यास क्रियाओं का ही परित्याग नहीं किंतु उनके पीछे रहनेवाले उन आवेगों का भी परित्याग जिनके विषय में इसे समझ लेना होगा कि ये व्यक्ति से बाहर की वस्तुएँ हैं यद्यपि वे उसके अंदर ही व्यक्त होती हैं और उन सुझावों का भी परित्याग करना होगा जो आवेगों के पीछे रहते हैं। इस प्रकार परित्याग करने पर किसी समय के अभ्यस्त, विचार और क्रिया-व्यापार स्वप्नावस्था में अब भी प्रकट हो सकते हैं, क्योंकि यह सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक नियम है कि जिस चीज को जागृत अवस्था में दबाया या त्यागा जाता है वह फिर से निद्रा और स्वप्न में आ सकती है कारण विचारादि अब भी अवचेतन सत्ता में विद्यमान होते हैं। किंतु यदि जागृत अवस्था में से इनका पूरी तरह सफाया कर दिया जाए, तो ये स्वप्न-व्यापार धीरे-धीरे समाप्त हो ही जाते हैं क्योंकि तब उन्हें खुराक नहीं मिलती और अवचेतन के संस्कार क्रमश: मिट जाते हैं। जिन स्वप्नों से तुम इतना अधिक डर गए हो उनका कारण यही है। तुम्हें यह समझना चाहिए कि वे केवल ऐसे गौण लक्षण हैं जिनसे एक बार जागृत स्थिति पर नियंत्रण प्राप्त कर लेने के बाद तुम्हें भयभीत होने की कोई ज़रूरत नहीं।

किन्तु तुम्हें उन विचारों से मुक्ति पानी होगी जो आत्मा-विजय को सफल बनाने के मार्ग में बाधक रहे हैं।

1. यह पूरी तरह समझ लो कि ये चीजें तुम्हारे भीतर किसी सचमुच की नैतिक भ्रष्टता के कारण नहीं आती, क्योंकि वह केवल तभी विद्यमान हो सकती हैं जब मन स्वयं भ्रष्ट हो, और विकृत प्राणिक आवेगों को सहारा देता हो। जहाँ मन एवं सकल्प उनका अस्वीकार करते है वहाँ नैतिक सत्ता स्वस्थ एवं निर्दोष होती है और यह केवल प्राणिक भागों या स्नायुमण्डल की किसी कमज़ोरी का या व्याधि का ही मामला होता है।

2. भूतकाल के विषय में मत सोचते रहो किन्तु धीरतापूर्ण आशा और विश्वास के साथ भविष्य की ओर अभिमुख रहो। भूतकालीन असफलताओं का चिंतन तुम्हारे पुन: स्वस्थ होने में बाधक बनेगा तथा तुम्हारे मन एवं संकल्प को निबल बनाएगा और आत्म-विजय एवं चरित्र के पुन: निर्माण के कार्य में रुकावट डालेगा।

3. यदि सफलता तुरंत न मिले तो निराशा के वशीभूत न होओ, परंतु तब तक धैर्य और स्थिरता के साथ कार्य जारी रखो जब तक वह पूरा न हो जाए।

4. अपनी कमजोरियों पर सदैव सोचते रहकर मन को संतप्त न करो। यह कल्पना न करो कि वे तुम्हें जीवन के या मानव आदर्शों को चरितार्थ करने के अयोग्य बनाते हैं। एक बार अपने अंदर इनके अस्तित्व से परिचित हो जाने के बाद शक्ति के अपने ही उदगमों की खोज करो बल्कि उन पर और विजय की अवश्यम्भाविता पर अपने को एकाग्र करो।

तुम्हारा पहला काम है अपने मन और शरीर के स्वास्थ्य को पुन: प्राप्त करना और इसके लिए आवश्यकता है मन की निश्चलता और कुछ समय के लिए शांतिपूर्ण जीवन बिताने की। ऐसे प्रश्नों से मन को उद्विग्न न करो जिन्हें हल करने को वह अभी तैयार नहीं है। सदा एक ही चीज का रटन न करते रहो। अपने मन को यथाशक्ति स्वस्थ और साधारण व्यापारों में लगाए रखो और उसे जितना दे सको उतना आराम दो। बाद में जब तुम्हारी मानसिक स्थिति ठीक और सन्तुलित हो जाए, तब तुम स्पष्ट विचार द्वारा यह निर्णय कर सकते हो कि तुम्हें अपने जीवन को क्या रूप देना है और भविष्य में क्या करना है।

मैंने तुम्हें यथाशक्ति अच्छी से अच्छी सलाह दी है और जो इस समय मुझे तुम्हारे लिए सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात लगती है उसके बारे में भी बताया है। जहाँ तक तुम्हारे पांडिचेरी आने का प्रश्न है उसके संबंध में यह अधिक अच्छा होगा कि तुम अभी तुरंत न आओ। मैंने तुम्हें जो कुछ लिखा है उससे अधिक मैं और कुछ नहीं कह सकता। तुम्हारे लिए सबसे अच्छा यह है कि तुम जब तक बीमार हो तब तक अपने पिता की देख रेख में रहो और सबसे बढ़कर तुम्हारे जैसी बीमारी में सुरक्षित नियम यह है कि जब तक तुम पूरी तरह ठीक न हो जाओ तथा बीमारी के साथ जुड़ी हुई स्मृतियों और संस्कारों की तीव्रता क्षीण न हो जाए, मन उनकी पकड़ में से छूट न जाए और वह मन पर भीषण और विक्षोभकारी छाप पैदा करे तब तक स्थान और उन परिस्थितियों में न लौटा जाए जहाँ तुम्हारा स्वास्थ्य बिगड़ा था।

-श्रीअरविन्द

पूर्वप्रकाशित कर्मधारा 1986 अगस्त

"कृष्ण अंतरस्थ भगवान हैं, वे एक ऐसी भागवत उपस्थिति हैं जो प्रत्येक वस्तु में विद्यमान हैं। वे सर्वोच्च प्रभु के आनंद और प्रेम के सर्वोच्च पक्ष भी हैं। वे मुस्कराती हुई कोमलता और क्रीड़ापूर्ण प्रसन्नता की मूर्ति हैं। वे साथ ही साथ खिलाड़ी, खेल के सभी साथी तीनों हैं।"

-श्रीअरविन्द

भौतिक आवश्यकताएँ व अनुशासन

श्रीअरविन्द

[आश्रम–जीवन आध्यात्मिक आवश्यकताओं की पूर्ति करता है-भौतिक जीवन की नहीं; श्रीअरविन्द द्वारा एक साधक के आश्रम-व्यवस्था पर असंतोष व्यक्त करने पर दिया गया उत्तर।]

ऐसा लगता है कि इन विषयों में तुम्हारी प्राणिक सत्ता ने जो वृत्ति बराबर ही बनाए रखी है वह है "सौदेबाजी" या "ढाबे"की वृत्ति। व्यक्ति किसी प्रकार का माल देता है जिसे वह भक्ति या समर्पण कहता है और उसके बदले माताजी आध्यात्मिक, मानसिक, प्राणिक और शारीरिक-सभी प्रकार की माँगों और कामनाओं की तृप्ति करने के लिए बाध्य हैं, और यदि उनके काम में कमी रह जाए तो यह समझा जाता है कि उन्होंने वादा तोड़ दिया है। आश्रम एक प्रकार का सामुदायिक होटल या ढाबा है, माताजी होटल की स्वामिनी या ढाबे की प्रबन्धकर्त्री हैं। व्यक्ति जो कुछ दे सकता है या देना पसंद करता है, वही कुछ देता है, अथवा यह भी हो सकता है कि वह ऊपर कहे माल के सिवा कुछ भी न दे; बदले में जीभ और पेट की तथा अन्य सभी भौतिक माँगों की पूरी-पूरी तृप्ति करनी होती है; नहीं तो, व्यक्ति को अपना धन अपने ही पास रखने का और भुगतान न करनेवाली होटल की मालकिन या ढाबे की प्रबंधिका को गाली देने का हर प्रकार से अधिकार है। इस मनोवृत्ति का साधना या योग के साथ किसी प्रकार का भी संबंध नहीं और इसे मेरे कार्य के या आश्रम के जीवन के आधार के रूप में मुझ पर थोपने के किसी भी व्यक्ति के अधिकार को मानने से मैं पूर्णतया इनकार करता हूँ।

यहाँ के भौतिक जीवन के लिए बस दो ही आधार संभव है। एक यह कि प्रत्येक मनुष्य एक आश्रम का सदस्य है जो आश्रम आत्मदान और समर्पण के सिद्धांत पर स्थापित है। यहाँ प्रत्येक मनुष्य भगवान का है और जो कुछ उसके पास है वह सब भगवान का है, यहाँ हम जो कुछ देते हैं वह अपना नहीं है बल्कि वह पहले से ही भगवान का है। यहाँ मूल्य या बदलने का कोई प्रश्न नहीं, कोई मोल–तोल नहीं, किसी माँग और कामना के लिए स्थान नहीं। माताजी ही एकमात्र अधिकारिणी हैं और वे अपने प्राप्त साधनों तथा अपने यंत्रों की क्षमताओं के अनुसार उत्तम रूप में सारी चीजों की व्यवस्था करती हैं। वे साधकों के मानसिक मानदंडों या प्राणिक बासनाओं और माँगों के अनुसार काम करने के लिए बँधी हुई बिलकुल नहीं हैं, उनके साथ व्यवहार करते समय वे प्रजातंत्रात्मक समानता का उपयोग करने के लिए बाध्य नहीं। वे प्रत्येक मनुष्य के विषय में यह देखती हैं कि उसकी सच्ची आवश्यकता क्या है और उसकी आध्यात्मिक प्रगति के लिए सबसे उत्तम क्या है और उसके अनुसार उसके साथ व्यवहार करने के लिए वे स्वतंत्र हैं। कोई भी आदमी उनके कार्यों पर विचार नहीं कर सकता अथवा उन पर अपना निजी नियम और मानदंड नहीं लाद सकता; केवल वही नियम बना सकती हैं और अगर उचित समझें तो फिर उन नियमों का उल्लंघन भी कर सकती हैं, पर कोई भी आदमी यह माँग नहीं पेश कर सकता कि उन्हें ऐसा ही करना होगा; व्यक्तिगत माँगों और कामनाओं को उन पर नहीं लादा जा सकता। अगर किसी आदमी को अपनी सच्ची आवश्यकता की बात कहनी हो अथवा उसे कोई ऐसी सूचना देनी हो जो उसके अपने प्राप्त क्षेत्र के भीतर पड़ती हो तो वह कह सकता है; परंतु यदि माताजी स्वीकृति न दें तो उसे संतुष्ट रहना चाहिए और उस बात को वहीं छोड़ देना चाहिए । यही वह आध्यात्मिक अनुशासन है जिसका केंद्र वह व्यक्ति होता है जो भागवत सत्य का प्रतिनिधित्व करता है या उसका मूर्त्त रूप होता है। या तो माताजी वही व्यक्ति हैं और इस प्रसंग की ये सब बातें स्पष्ट रूप से साधारण समझ की बातें है, अथवा माताजी वह नहीं हैं और उस हालत में किसी को यहाँ रहने की आवश्यकता नहीं। प्रत्येक आदमी अपने निजी रास्ते पर जा सकता है और फिर न तो आश्रम ही रह जाता है और न योग ही।

दूसरी ओर, यदि कोई आश्रम का सदस्य बनने या अनुशासन का पालन कर सकने के लिए तैयार नहीं और फिर भी उसे इस योग में कोई स्थान दिया जाता है तो वह आश्रम से अलग रहता है और अपना खर्च अपने आप चलाता है। भौतिक स्तर पर उसके लिए, कार्य की सुरक्षा के लिए आवश्यक नियमों को छोड़कर और कोई अनुशासन नहीं होता। माताजी पर उस व्यक्ति का कोई भौतिक उत्तरदायित्व नहीं होता|

'कृष्ण' का भाव

डॉ जे.पी सिंह

"कृष्ण अंतरस्थ भगवान हैं, वे एक ऐसी भागवत उपस्थिति हैं जो प्रत्येक वस्तु में विद्यमान हैं। वे सर्वोच्च प्रभु के आनंद और प्रेम के सर्वोच्च पक्ष भी हैं। वे मुस्कराती हुई कोमलता और क्रीड़ापूर्ण प्रसन्नता की मूर्ति हैं। वे साथ ही साथ खिलाड़ी, खेल के सभी साथी तीनों हैं।"

-श्रीअरविन्द

कृष्ण होने का अर्थ गंभीर है। इस अर्थ को गंभीरतापूर्वक समझने की आवश्यकता है। स्वामी अखण्डानन्द सरस्वती ने कृष्ण होने का निहितार्थ समझाते हुए कहा है: "कृ में अंकुश है, जो एक बार हृदय में गड़ जाने से भक्त का सारा कल्मष खींचकर बाहर निकाल देता है और उसे अपना बना लेता है। "

"पापं अपकर्षति निर्मूलयति च।"

अर्थात् जो पाप को समूल नाश करके हमारी रक्षा करता हे वही कृष्ण है। 'क' का अर्थ प्रजापति भी है। इस दृष्टि से भगवान कृष्ण जगत के सर्जक और पालक है। इसीलिए श्रीमद्भागवत महापुराण में कृष्ण को साक्षात् परमात्मा कहा गया है: 'कृष्णस्तु भगवान्स्वयम्।'

श्रीकृष्ण केवल इतिहास पुरुष नहीं है। वे लोक मन में रचे-बसे हैं और भारत के सांस्कृतिक मूल्यों के अजस्थ स्रोत हैं। कृष्ण कोरे सिद्धांत न होकर व्यावहारिक जीवन-दर्शन के पुरोधा हैं। डॉ राम मनोहर लोहिया कहते हैं: 'कृष्ण की सभी चीजें दो हैं-दो माँ, दो पिता, दो प्रेमिकाएँ और दो नगर। श्रीकृष्ण हैं तो देवकी नन्दन किन्तु यशोदानन्दन अधिक हैं। जहाँ वसुदेव हताश हैं वहाँ नन्द तेजपूर्ण हैं। वे ऐसी जीवंत स्मृति हैं, जिसे काल कभी मिटा नहीं सकता।"

कृष्ण धरती पर खाते-खेलते देवता हैं और स्वर्ग के सुख में लिप्त देवताओं से भिन्न हैं। कृष्ण निरंतर मानव बनने की प्रक्रिया में रहते हैं, भले ही वे दिव्य देहधारी परमात्मा हों। वे नाचते हैं, हँसते हैं, बंसी बजाते हैं, गीत गाते हैं और रासलीला करते हैं। तभी तो उन्हें 'राधारमण' कहा जाता है।

योगेश्वर कृष्ण धर्म के शीर्ष पर होते हुए भी सहज हैं, प्रसन्न हैं और आप्तकाम होते हुए भी लोकहित में निरत हैं। कृष्ण अकेले हैं जो एक साथ समग्र जीवन को स्वीकार कर लेते हैं। वे आत्मा के साथ शरीर को भरपूर जीते हैं। इसीलिए कृष्ण को 'पूर्णावतार' कहा गया है, क्योंकि बिना भेदभाव के वे सब कुछ आत्मसात कर लेते हैं। उनका अध्यात्म गगन में विहार नहीं करता है। परमार्थ को व्यवहार-भूमि पर खड़ा कर देना कृष्ण का 'कृष्णत्व' है। कृष्ण का सारा जीवन त्यागमय रहा है। जन्म के समय माता-पिता का त्याग, लोक संग्रह में नन्द-यशोदा के वात्सल्य भरे आँगन का त्याग, अपनी प्रिया राधा का त्याग, गोप-गोपियों का त्याग, जन्मस्थली मथुरा का त्याग, प्रेम रस में सराबोर वृन्दावन-बरसाना का त्याग उनके अवतार का मन्तव्य साबित करता है, जो लोकमंगल और धर्म की स्थापना के लिए हुआ था।

श्रीअरविन्द ने कहा है-"जब मैं श्रीकृष्ण में निवास करता हूँ तब अहंकार और स्वार्थ विलीन हो जाते हैं। केवल भगवान ही मेरे प्रेम को अटल एवं असीम बना सकते हैं। श्रीकृष्ण में निवास करने पर शत्रुता भी प्रेम की ही एक क्रीड़ा तथा भाइयों का मल्ल युद्ध बन जाती है।"

कृष्ण स्वयं हँसती हुई मनुष्यता हैं। वे सर्वरक्षक परमात्मा होते हुए भी युद्ध से पलायन नहीं करते। करुणा एवं प्रेम से परिपूर्ण होते हुए भी वे धर्म के रक्षार्थ रण क्षेत्र में कूद पड़ते हैं। अहिंसक चित्त है उनका, फिर भी हिंसा के दावानल में उतर आते हैं। ऐसा परमात्मा अर्थहीन है, जो संसार को अपने आलिंगन में न ले सकता हो। जब धर्म अँधेरे में डूबेगा तभी कृष्ण का मूल्य समझ में आएगा। यदि कोई लोकदृष्टा क्रांति के प्रवाह में शामिल होने से कतराता है तो वह अपने कर्त्तव्य-पथ से च्युत हो जाता है। यही कृष्ण की गीता का मूल मंत्र है। महाभारत में अन्यायी धृतराष्ट्र के विरोध में खड़े होने का साहस बहुत कम लोगों में था। लोक चित्त में आई इस विकृति को देखकर योगेश्वर कृष्ण का 'चिन्तन चक्र' चलता है, जिसका सुंदर परिणाम है "गीताशास्त्र"। इस विकार से लोक चित्त को मुक्त करने का अंतिम विकल्प है युद्ध। अर्जुन के मोह को नष्ट करने के लिए कृष्ण का 'चिन्तन चक्र' चलता है। अर्जुन को आसक्तियों से मुक्त करके उन्हें धर्म युद्ध के लिए कर्त्तव्य परायण बनाना इस 'चिन्तन चक्र' का परिणाम है। अतएव कालमयी गीता अवतरित हो गई ।

श्रीकृष्ण 'रास लीला' करते हैं जिसका मंतव्य गंभीरता से समझना आवश्यक है। यह साधना का महत्वपूर्ण हेतु बनता है। ब्रज भूमि के निधिवन में हुई 'रासलीला' वेदों में वर्णित उस नक्षत्र रासलीला से भिन्न नहीं है। सूर्य को केंद्र में रखकर ज्योतिपिण्ड नियमित गति से अपनी-अपनी धुरी पर परिक्रमा करते हैं। रासलीला का अर्थ है जीवात्मा का नाचते-नाचते परमात्मा से मिलना । इसीलिए शुक्रदेव श्रीकृष्ण की रासलीला को कालजयी लीला मानते हैं-अनासक्त रासमयी लीला।

आरोहण और अवतरण में मौलिक अंतर है। अपूर्ण का आरोहण होता है और पूर्ण का अवतरण। भगवान कृष्ण तो 'कोटि सूर्य समप्रभ' हैं । व्यापक अंधकार को नष्ट करने के लिए वे अवतरित होते हैं। यही वह अंधकार था जो कुरुक्षेत्र के मैदान में अर्जुन की आँख के सामने छा गया था। अज्ञान के इसी अंधकार में गीता के ज्ञान का दिव्य प्रकाश अवतरित हुआ। यही अवतरण का आरोहण से मिलन है।

यदि कृष्ण एक पक्ष में अकेले हों और अपने सैन्य सामंतों, अस्त्र-शस्त्र तथा संघारक हथियारों से सुसज्जित एवं सुव्यवस्थित सारा संसार दूसरे पक्ष में हो, तो भी अपने लिए भागवत संरक्षण को ही चुनो। यदि संसार तुम्हारे शरीर पर से चला जाए , उसके अस्त्र-शस्त्र तुम्हारी धज्जियाँ उड़ा दें और उसके अश्वारोही तुम्हारे अंग प्रत्यंग को कुचलकर आकारहीन कीचड़ में बदल दें तथा मार्ग के एक किनारे छोड़ दें तो भी कोई परवाह न करो! क्योंकि मन तो हमेशा ही छायामूर्ति रहा है और शरीर एक शव! आत्मा अपने आवरणों से मुक्त होकर अबाध विचरण करती और विजयी होती है।

प्रगति

केवल अपने व्यक्तिगत जीवन में ही नहीं, बल्कि सामूहिक जीवन में भी सीख लो। आंतरिक प्रगति की पहली शर्त है, तुम्हारी प्रकृति के किसी भी भाग में, जो भी ग़लत गतिविधियाँ क्रिया हो, उसे स्वीकार कर लेना। ग़लत का अर्थ है, जो कुछ भी (सत्य, उच्चतर चेतना और उच्चतर आत्मा) भगवान के पथ से हट जाए, एक बार उस ग़लत गतिविधि को पहचान लो, तो स्वीकार कर लो, उस पर लीपा-पोती मत करो, अपनी सफ़ाई मत दो, उसे परम प्रभु को समर्पित कर दो कि उनका 'प्रकाश' और उनकी 'कृपा' उतर कर उस के स्थान पर सत्य 'चेतना' की उचित क्रिया को प्रतिष्ठित कर दे। प्रगति सृष्टि में भागवत प्रभाव का चिह्न है।

पार्थिव जीवन का उद्देश्य है प्रगति। अगर तुम प्रगति करना बंद कर दो तो तुम मर जाओगे। प्रत्येक क्षण जो तुम प्रगति किए बिना गुज़ारते हो, तुम्हारी क़ब्र की ओर एक और कदम होता है।

जीवन गति है, जीवन प्रयास है, वह आगे कूच कर रहा है, भावी अन्तः प्रकाशों और उपलब्धियों की ओर चढ़ रहा है। आराम करना चाहने से बढ़कर ख़तरनाक और कुछ नहीं होता है

तुम्हें हमेशा कुछ सीखना होता है, कुछ प्रगति करनी होती है और हर स्थिति में हम सीखने और प्रगति करने का अवसर पा सकते हैं। प्रगति हर क्षण मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए, जो कुछ तुम हो और जो कुछ तुम्हारे पास है, उसे छोड़ने के लिए तैयार रहना है। सच्ची प्रगति है, हमेशा भगवान के अधिक निकट आना।

शर्त यही है कि **प्रगति** सच्ची होनी चाहिए, जैसा कि यह कहानी कहती है –

उसी धन का नाम ध्यान है|

एक फ़कीर जो एक वृक्ष के नीचे ध्यान करता था, रोज़ एक लकड़हारे को लकड़ी काटकर ले जाते देखता था। एक दिन उससे कहा कि सुन भाई, दिन-भर लकड़ी काटता है, दो वक़्त की रोटी भी नहीं जुट पाती। तू ज़रा आगे क्यों नहीं जाता। वहाँ आगे चंदन का जंगल है। एक दिन काट लेगा, सात दिन के खाने के लिए काफ़ी हो जाएगा।

गरीब लकड़हारे को भरोसा तो नहीं आया, क्योंकि वह तो सोचता था कि जंगल को जितना वह जानता है और कौन जानता होगा! जंगल में ही तो लकड़ियाँ काटते ज़िंदगी बीती। यह फ़कीर यहाँ बैठा रहता है इस वृक्ष के नीचे, इसको क्या ख़ाक पता होगा? मानने का मन तो न हुआ, लेकिन फिर सोचा कि हर्ज़ क्या है, कौन जाने ठीक ही कहता हो! फिर झूठ कहेगा भी क्यों? शांत आदमी मालूम पड़ता है, मस्त दिखाई देता है। कभी बोला भी नहीं इससे पहले। एक बार प्रयोग करके देख लेना ज़रूरी है।

ऐसा सोचकर जंगल में आगे तक गया और लौटा तो फ़कीर के चरणों में सिर रखा और कहा कि मुझे क्षमा करना, मेरे मन में बड़ा संदेह आया था, क्योंकि मैं सोचता था कि लकड़ियों की पहचान तो मुझसे ज़्यादा किसी को भी नहीं होगी। पर मुझे चंदन की तो पहचान ही नहीं थी। मेरा बाप भी लकड़हारा था, उसका बाप भी लकड़हारा था। हम यही, जलाऊ लकड़ियाँ काटते-काटते ज़िदगी बिताते रहे, हमें चंदन का पता भी क्या, चंदन की पहचान क्या! हमें तो चंदन मिल भी जाता तो भी हम उसे बाज़ार में ऐसे ही काट कर बेच आते। तुमने पहचान बताई, तुमने गंध जतलाई, तुमने परख दी। मैं भी कैसा अभागा! काश, पहले पता चल जाता! फ़कीर ने कहा कोई फ़िक्र न करो, जब पता चला तभी जल्दी है। जब घर आ गए तभी सवेरा है।

दिन बड़े मज़े में कटने लगे। एक दिन लकड़ियाँ काट लाता, सात-आठ दिन, दस दिन जंगल आने की ज़रूरत ही न रहती।

एक दिन फ़कीर ने कहा, मेरे भाई, मैं सोचता था कि तुम्हें कुछ अक्ल आएगी। ज़िंदगी-भर तुम लकड़ियाँ काटते रहे, आगे न गए; तुम्हें कभी यह सवाल नहीं उठा कि इस चंदन के आगे भी कुछ हो सकता है?

उसने कहा, यह तो मुझे सवाल ही नहीं आया। क्या चंदन के आगे भी कुछ है? उस फ़कीर ने कहा: चंदन के ज़रा आगे जाओ तो वहाँ चाँदी की ख़दान है। लकड़ियाँ-वकड़ियाँ काटना छोड़ो। एक दिन ले आओगे, दो-चार छ: महीने के लिए हो जाएगा।

अब तो भरोसा आ गया था। भागा। संदेह भी न उठाया। चाँदी पर हाथ लग गए, तो कहना ही क्या! चाँदी ही चाँदी थी! चार-छ: महीने नदारद हो जाता। एक दिन आ जाता, फिर नदारद हो जाता। लेकिन आदमी का मन ऐसा मूढ़ है कि फिर भी उसे ख्याल न आया कि आगे कुछ और भी हो सकता है। फ़कीर ने एक दिन कहा कि तुम कभी जागोगे कि नहीं, या मुझे ही तुम्हें जगाना पड़ेगा। आगे सोने की ख़दान है, मूर्ख! तुझे खुद अपनी तरफ़ से सवाल, जिज्ञासा, मुमुक्षा कुछ नहीं उठती कि ज़रा और आगे देख लूँ? अब छह महीने मस्त पड़ा रहता है, घर में कुछ काम भी नहीं है, फ़ुरसत है। ज़रा जंगल में आगे जाकर देखूँ, यह ख्याल में नहीं आता?

उसने कहा कि मैं भी मंदभागी, मुझे यह ख्याल ही न आया, मैं तो समझा कि चाँदी, बस आखिरी बात हो गई, अब और क्या होगा? गरीब ने सोना तो कभी देखा न था, सुना था। फ़कीर ने कहा: थोड़ा और आगे सोने की ख़दान है। और ऐसे कहानी चलती है। फिर और आगे हीरों की खदान है। ऐसे कहानी चलती रही। और एक दिन फ़कीर ने कहा कि नासमझ, अब तू हीरों पर ही रुक गया? अब तो उस लकड़हारे को भी बड़ी अकड़ आ गई, बड़ा धनी भी हो गया था, महल खड़े कर लिए थे। उसने कहा अब छोड़ो, अब तुम मुझे परेशान न करो। अब हीरों के आगे क्या हो सकता है?

उस फ़कीर ने कहा हीरों के आगे मैं हूँ। तुझे यह कभी ख्याल नहीं आया कि यह आदमी मस्त यहाँ बैठा है, जिसे पता है हीरों की खदान का, वह हीरे नहीं भर रहा है, इस को आगे ज़रूर कुछ और मिल गया होगा! हीरों से भी आगे इसके पास कुछ होगा, तुझे कभी यह सवाल नहीं उठा?

रोने लगा वह आदमी। सिर पटक दिया चरणों पर। कहा कि मैं कैसा मूढ़ हूँ, मुझे यह सवाल ही नहीं आया। तुम जब बताते हो, तब मुझे याद आता है। यह ख्याल तो मेरे जन्मों-जन्मों में नहीं आ सकता था कि तुम्हारे पास हीरों से भी बड़ा कोई धन है।

फ़कीर ने कहा: उसी धन का नाम ध्यान है।

अब तेरे पास खूब धन है, अब धन की कोई ज़रूरत नहीं। अब ज़रा अपने भीतर की खदान खोद, जो सबसे कीमती है।

प्रगति (सदाबहार) वह कारण जिसके लिए हम धरती पर हैं

(श्रीमाँ द्वारा दिए गए पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

माताजी के संदेश

कठिन वक्त पृथ्वी पर आता है। मनुष्य को विवश करने के लिए कि वह क्षुद्र अहंकार से ऊपर उठे और प्रकाश एवं बल प्राप्त करने के लिए भगवान की ओर उन्मुख हो । मानवीय प्रज्ञा प्रज्ञानजनित होती है , सिर्फ भगवान ही सब कुछ जानते हैं ।

मनुष्यों के मध्य रहकर भी अपने को एकाकी महसूस करना ही वह चिह्न है कि अब तुम अपने भीतर भगवान की उपस्थिति ढूँढने का प्रयास करो । एक वक्त ऐसा आता है । अब जीवन भगवान के सामीप्य के बिना असह्य हो जाता है । ऐसे वक्त पूरी तरह अपने को भगवान को सौंप दो और तुम पुनः उनके प्रकाश में उदित हो उठोगे ।

ऐसा होता है कि किसी एक मुहूर्त्त में सहसा कोई यह सोचने लगता है कि वह यहाँ इस पृथ्वी पर बिना कारण, बिना प्रयोजन के नहीं आया है; कि उसे कुछ करना है और वह 'कुछ' उसके अहंकार से पीड़ित नहीं है । इस क्षण के परिचय का पहला प्रश्न है कि मैं यहाँ क्यों हूँ, किस कारण हूँ, मेरे जीवन का क्या अभिप्राय है ?

मैं उस दिन की राह देख रही हूँ जब व्यवस्था अव्यवस्था पर विजय पाएगी और सामंजस्य पृथकता का स्वामी होगा । जो लोग वर्तमान समय को इन निम्न गतिविधियों से मेरे साथ मिलकर लड़ रहे हैं , उनके साथ मेरी शक्ति और सहायता सघन रूप में है । मैं उनसे यही चाहती हूँ कि वे आश्वस्त रहें, , सहन करें।

सत्य की विजय होगी।

ओह ! तुम लोग कब जागोगे ?

इस जड़ता को विच्छिन्न करोगे ?

अज्ञान को अपने से दूर करोगे ?

इस दिव्य रोशनी का स्पर्श पाकर

सत्य जीवन में डुबकी लगाओगे ?

कब ? कब वह सौभाग्यशाली और

अद्भुत दिवस आएगा ?

पूर्वप्रकाशित कर्मधारा 1988 मई

श्री अरविन्द के वचनों की व्याख्या

आंतरिक सत्ता की मुक्ति

जब व्यक्ति साधना की प्रारंभिक अवस्था में होता है तो उसे प्रायः ही यह प्रतीत होता है कि आंतरात्मिक सत्ता एक प्रकार के आवरण या कारागार में बंद है जो उसे अपने-आपको बाह्य रूप में अभिव्यक्त करने तथा बाह्य चेतना अर्थात् ऊपरी सत्ता के साथ चेतन और स्थायी संबंध स्थापित करने से रोक सकता है। जब व्यक्ति आंतरात्मिक सत्ता के साथ संबंध स्थापित करने का प्रयत्न करता है तो उसे बिलकुल यही अनुभव होता है कि वह या तो उन दीवारों के पीछे प्राप्त हो सकती है जिन्हें उसे तोड़ना पड़ेगा, या वह ऐसे द्वार के पीछे स्थित है जिसे बलपूर्वक खोलकर ही वह प्रवेश पा सकता है। यदि कोई इन दीवारों को तोड़ सके या द्वार को खोल सके तो आंतरात्मिक सत्ता मुक्त हो जाती है, और तब वह बाह्य रूप में भी अपने आपको अभिव्यक्त कर सकती है |

यह कहने की आवश्यकता नहीं कि ये अपने आप में प्रतिरूप हैं। स्वभावतः ही प्रत्येक का अपना-अपना रूप और प्रत्येक की अपनी-अपनी प्रक्रिया है। किंतु छोटी-मोटी विभिन्नताओं के होते हुए भी इनमें से कुछ प्रतिरूप उन सबके लिए सामान्य हैं जिन्होंने वह अनुभूति प्राप्त कर ली है। उदाहरणार्थ, जब व्यक्ति अपनी चेतना के गहरे तल में अंतरात्मा को ढूंढने के लिए अपनी सत्ता की गहराई में उतरता है तो प्रायः ही उसे ऐसा प्रतीत होता है कि वह किसी गहरे कुँए में, अधिकाधिक नीचे, उतर रहा है मानों वह सचमुच ही कुँए के तल में डुबकी लगा रहा हो। यह है तो एक तुलनामात्र, पर यदि अनुभव के साथ ये सब बातें जोड़ दी जायें तो ये उसे अधिक शक्ति और मूर्त्त वास्तविकता प्रदान करती हैं।

जब मनुष्य अपनी आंतरिक सत्ता की तथा उस सत्ता का निर्माण करनेवाले भिन्न-भिन्न भागों की खोज करने लगता है, तो उसे प्रायः ही ऐसा प्रतीत होता है मानों वह किसी बड़े दालान या कमरे में घुस रहा हो, और उसके रंग, वातावरण तथा अंदर की वस्तुओं के अनुसार उसे सत्ता के उस भाग का स्पष्ट बोध हो जाता है जिसमें वह प्रवेश कर रहा है। इसके बाद वह अधिकाधिक गहरे भागों की ओर बढ़ सकता है, इनमें से प्रत्येक भाग का अपना-अपना विशिष्ट स्वभाव होता है।

अधिकतर तो ये आंतरित प्रवेश रात को ही होते हैं, उस दशा में ये कुछ स्वप्नों के समान अधिक मूर्त्त रूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार तुम्हें ऐसा प्रतीत होता है कि तुम एक घर में प्रवेश कर रहे हो और उस घर से तुम खूब परिचित हो। काल और युग के अनुसार वह अंदर से भिन्न प्रतीत हो सकता है। कभी-कभी वह बड़ी अस्तव्यस्त और गड़बड़ी की अवस्था में भी होता है अथवा उसकी सब वस्तुएँ एक में एक मिली पड़ी होती हैं। कभी-कभी सब चीजें टूटी-फूटी अवस्था में भी दिखाई देती हैं। संक्षेप में, वहाँ अस्तव्यस्तता का पूर्ण साम्राज्य होता है। इसके विपरीत, किसी समय वही सब वस्तुएँ व्यवस्था में भी आ जाती हैं, तब वे सब अपने अपने स्थान पर रखी होती हैं मानों किसी ने झाड़-पोंछकर घर का सब सामान ठीक स्थान पर रख दिया हो। पर फिर भी घर सदा वही होता है।

वस्तुतः यह घर तुम्हारी आंतरिक अवस्था का एक बाह्य प्रतिरूप है। और जो कुछ वहाँ देखते हो, जो कुछ तुम करते हो वह तुम्हारे मनोवैज्ञानिक कार्य का प्रतीकात्मक चित्र होता है। यह बात अनुभव को मूर्त्त रूप देने के लिए आत्यधिक उपयोगी है।

कुछ लोग केवल बौद्धिक होते हैं; उनके सामने सब कुछ प्रतिरूपों द्वारा नहीं बल्कि विचारों द्वारा व्यक्त होता है। किंतु जब कभी ये लोग अधिक भौतिक प्रदेश में उतरना चाहते हैं तो वे वस्तुओं के मूर्त्त रूप को नहीं छू सकते, वे केवल विचारों के प्रदेश अर्थात् मन में ही कार्य कर सकते हैं और अनिश्चित काल तक वहीं पड़े रहते हैं। ऐसी अवस्था में मनुष्य

सोचता है कि वह विकास कर रहा है और वह मानसिक रूप में विकास कर भी रहा होता है, किंतु विकास की कोई सीमा नहीं है, वह सहस्रों वर्षों तक चलता रह सकता है। कारण, विकास का क्षेत्र अत्यंत विशाल एवं अनिर्धारित है और वह सदा नए-नए रूप धारण करता रहा है।

किंतु यदि मनुष्य अपने प्राणिक और भौतिक पक्ष में भी उन्नति करना चाहता है तो यह प्रतीकात्मक रूप कर्म को निश्चितता तथा अधिक वास्तविकता प्रदान करने में अत्यधिक उपयोगी सिद्ध होता है। स्वभावत: ही यह पूर्णरूप से अपनी इच्छा के अनुसार नहीं होता, यह प्रत्येक की प्रकृति पर निर्भर है। किंतु जो लोग प्रतिरूपों पर अपना ध्यान एकाग्र करने की शक्ति रखते हैं उन्हें यह सुविधा रहती है। उदाहरणार्थ, तुम एक ऐसे बंद दरवाज़े के सामने ध्यान में बैठे हो जो काँसे के भारी दरवाज़े के समान प्रतीत होता है। तुम वहाँ शांत रहते हो और इच्छा करते हो कि द्वार खुल जाए और तुम उसके दूसरी ओर चले जाओ। तब तुम्हारी समग्र एकाग्रता, समस्त अभीप्सा इकट्ठी होकर उस द्वार पर धक्का मारने के लिए प्रेरित होती है, वह अधिकाधिक वेग के साथ धक्का लगाती है, और तब एकदम द्वार खुल जाता है और तुम शीघ्रतापूर्वक प्रकाश के अंदर प्रविष्ट हो जाते हो। यह एक शक्तिशाली और अविस्मरणीय अनुभव है। तुम्हें चेतना के अचानक और आमूल परिवर्तन से पूर्ण आनंद प्राप्त होता है, इसके साथ ही तुम्हें वह प्रकाश भी मिलता है जो तुम्हें पूर्णतया अपने वश में कर लेता है और तुम्हें ऐसा अनुभव होता है कि तुम एक दूसरे ही व्यक्ति बन गए हो। अपनी अंतरात्मिक सत्ता के साथ संपर्क स्थापित करने का यह एक अत्यधिक मूर्त्त और प्रभावशाली साधन है।

सहस्रों में कोई एक भी ऐसा नहीं होता जो, क्षण भर के लिए भी व्यक्त रूप में अपनी अंतरात्मिक सत्ता के साथ चेतन संपर्क रख सके। अंतरात्मिक सत्ता अंदर ही अंदर काम कर सकती है, किंतु यह बह इतने अलक्ष्य और अचेतन रूप में करती है कि बाह्य सत्ता को उसका अस्तित्व तक अनुभव नहीं होता। अधिकतर अवस्थाओं में, सच पूछो तो प्रायः सभी अवस्थाओं में, ऐसा प्रतीत होता है मानो वह सोई पड़ी है, बिलकुल निष्क्रिय और तंद्रा की अवस्था में पड़ी है।

केवल साधना और अनवरत प्रयत्न से ही मनुष्य अपनी अंतरात्मिक सत्ता के साथ चेतन संबंध स्थापित करता है। स्वभावतः ही कुछ दृष्टांत इसके अपवादस्वरूप भी हैं जिनमें अंतरात्मिक सत्ता एक पूर्ण विकसित सत्ता होती है, स्वतंत्र और अपनी स्वामिनी और तब वह अपना कार्य करने के लिए स्वेच्छा से मनुष्य शरीर में जन्म लेती है। ऐसी अवस्था में व्यक्ति चेतन रूप में साधना न भी करे, तो भी अंतरात्मा इतनी शक्तिशाली हो सकती है कि वह उसके साथ कम या अधिक चेतन रूप में संबंध स्थापित कर ले। किंतु ऐसे दृष्टांत बहुत ही कम होते हैं। साधारणतया तो अपनी अंतरात्मिक सत्ता के प्रति सचेतन होने के लिए मनुष्य को स्थिरतापूर्वक प्रयत्न करना पड़ता है। यह कहा जाता है कि यदि तुम तीस वर्ष तक अनवरत प्रयत्न करके भी इस तक पहुँच जाओ तो यह तुम्हारे लिए एक सौभाग्य की बात होगी। पर इसमें कम समय भी लग सकता है। किंतु जो ऐसा कर सकते हैं वे महान योगी होते हैं और पहले से ही इस कार्य में दीक्षित होते हैं, उन्हें कुछ हद तक दिव्य सत्ताएँ भी कहा जा सकता है।

"एकाग्रता करने के स्थान पर शरीर को ढीला छोड़कर ध्यान भी किया जा सकता है।"

ध्यान के कई प्रकार होते हैं, जो एक दूसरे से भिन्न हैं। जिसे लोग साधारणतया ध्यान कहते है वह एक विषय या विचार को चुन लेना है तथा उस विषय या विचार के ध्यान के अंदर एकाग्रता तो है, किंतु वह उतनी पूर्ण नहीं है जितनी कि एक विशुद्ध एकाग्र चिंतन में होती है जहाँ उस बिंदु के अतिरिक्त जिस पर एकाग्रता की जाती है और किसी वस्तु का अस्तित्व ही नहीं रहता।

ध्यान को किया एकाग्रता से प्राधिक नमनीय होती है और उस में तनाव भी कम होता है। उदाहरणार्थ, जब मनुष्य

किसी समस्या को समझता है, वह समस्या चाहे मनोवैज्ञानिक हो चाहे साधारण परिस्थितियों के समूह से संबंध रखती हो वह उस पर विचार करता है, अपनी तर्कबुद्धि की सहायता लेता है, वह उससे संबंधित समस्त सभाषनामों के बारे में सोचता है, उनकी परस्पर तुलना करता है, उनका अध्ययन करता है। यह एक प्रकार का ध्यान है। जब-जब इसकी आवश्यकता पड़ती है वह सहज भाव में ऐसा ही करता है। ध्यान का एक प्रकार यह भी है कि व्यक्ति एक ही विचार पर अपना समस्त ध्यान एकाग्र कर लेता है और तब उसके लिए केवल उसी का अस्तित्व रहता है। यह भी एकाग्रता' के ही समान है, किंतु सर्वांगीण होने के स्थान पर यह केवल मानसिक होता है। सर्वांगीण एकाग्रता का अर्थ प्राण और शरीर की भी सब गतिविधियों की एकाग्रता है। एक नियत बिंदु पर स्थिरतापूर्वक ध्यान जमाने की प्रक्रिया से सभी अच्छी तरह परिचित हैं। एकाग्रता शरीर की भी होती है, मनुष्य एक बिंदु पर अपनी दृष्टि जमा लेता है और अपनी आँखें बंद कर लेता है और उन्हें उससे जरा भी इधर उधर नहीं हटाता। इसका परिणाम साधारणतया यह होता है कि व्यक्ति स्वयं ही वह बिंदु बन जाता है। मैं एक ऐसे व्यक्ति को जानती हूँ जो कहता था कि वह उस बिंदु के भी आगे निकल जाता है, अर्थात् वह उससे इस हद तक तादात्म्य स्थापित कर लेता है कि वह उसके अंदर से होकर उसके दूसरे छोर तक पहुँच जाता है और उसके बाद उच्च प्रदेशों में प्रविष्ट हो जाता है। जो भी हो, यह सत्य है कि यदि मनुष्य किसी वस्तु पर पूर्ण एकाग्रता प्राप्त कर लेता है तो एक ऐसा क्षण अवश्य आता है जब कि तादात्म्य पूर्ण हो जाता है और तब जो व्यक्ति एकाग्रता कर रहा है उसमें तथा जिस पर एकाग्रता की जा रही है उसमें कोई भेद नहीं रहता। इसी को सर्वांगीण एकाग्रता कहते हैं, जबकि ध्यान विचार की एक विशेष एकाग्रता है अर्थात् वह एक आंशिक एकाग्रता है। किंतु एकाग्र करने का अर्थ अपने आपको सीमित करना है। मनुष्य एक ही समय बहुत से विषयों पर अपने आपको एकाग्र नहीं कर सकता नहीं तो वह एकाग्रता ही नहीं रहेगी। "समस्त कर्म को अनुभव प्राप्ति का एक विद्यालय होना चाहिए" | यदि मनुष्य कुछ न करे तो उसे तो अनुभव प्राप्त नहीं हो सकता। समस्त जीवन ही अनुभव प्राप्ति का क्षेत्र है: प्रत्येक विचार जो व्यक्ति करता है एक अनुभव हो सकता है और उसे ऐसा होना चाहिए भी। विशेषतया कर्म अनुभव का एक ऐसा स्वाभाविक क्षेत्र होता है जहाँ व्यक्ति को उस समस्त उन्नति को जिसे वह अपने अंदर करने का यत्न करता है कार्यरूप देना चाहिए ।

अज्ञान में लिप्त आत्मा

अनुवाद – विमला गुप्त

अज्ञान में लिप्त ओ आत्मा, जाग अपनी मूर्छना से।

तू विश्वाग्नि की लौ, दिव्यता की चिंगारी है,

अपने मन और हृदय को ऊपर उठा भव्य प्रभा की ओर।

अन्धकार में सूर्य-सम, पुनः प्राप्त कर अपनी दीप्ति को।

एकमेव, वैश्विक, सर्वधारक सृष्टि,

अब मत घूमती रह चक्राकार निश्चेतन प्रकृति के साथ,

स्वयं को ईश्वर प्रदत्त अनुभव कर, अनश्वर जान।

श्री अरविंद की कवितायें - अनुवादक रामधारी सिंह दिनकर

विज्ञान के अनुसंधान

(डिसकवरीज ऑव् साइन्स)

(1)

क्या तुम्हारा संसार

विद्युत् के समूह से चलता है ?

मगर वह तो एक ज्योति की कणिका है,

चिनगारी का चक्र है,

उस पावक का कण है,

तुम्हारा नेबुला और तुम्हारा सूर्य

जिसके इतस्ततः विकीर्ण ज्वाला बिन्दु हैं,

झपक और झिलमिलाहट हैं।

अन्य शक्तियाँ भी हैं,

जो अदृश्य प्रकाश से आच्छादित

काम करती हैं ।

एक अन्तहीन, अनादि गति है,

जो काल की घटिकाओं में,

उस एक के अमूर्त आकाश में

फैल रही है, सिमट रही है।

तुम्हारे अनुसन्धान सतही चीजें हैं,

स्क्रीन पर की घटनाएं और प्रतिभास हैं।

ये प्रकृति के द्वारा बतायी गयी युक्तियाँ हैं।

किन्तु, उनके पीछे प्रकृति के छिपे हुए भेद

घात लगाये बैठे हैं।

अनुभववादी मस्तिष्क हर चीज के साथ

अनगढ़ बर्ताव करता है।

मगर प्रकृति के ये भेद

मस्तिष्क को अज्ञात हैं।

वे अछूते और निरापद हैं।

सनातन ऊर्जा निरन्तर दौड़ रही है।

जीतने कुछ का पता चला है,

वह कुछ नहीं है,

मात्र इशारा है, संकेत है, निशान है।

(2)

प्रकृति ऊर्ध्व गमन में है।

वह अपनी मंजिल तक कैसे पहुंचेगी ?

मंजिल तक वह मानवात्मा की

सूदृढ़ कल्पना से पहुंचेगी,

मनुष्य की उस धीमी, निस्तेज बुद्धि से नहीं,

जो लड़खड़ाती है, कदम-कदम पर ठोकर खाती है;

जो आकार का विच्छेदन और विश्लेषण करके

संतोष कर लेती है।

दिमाग का बीजगणित,

इन्द्रिय की योजना,

प्रतीक की भाषा, जिसमें न गहराई है,

न पंख है,

चीजों के बाहरी आकार को

संभालने को शक्ति,

ये ही हमारी बुद्धि के

अल्प अर्जन हैं।

सत्य इससे कहीं महान् है

और उसके रास्ते भी अधिक गंभीर है।

एक आशय,जो अपने भीतर

सब कुछ समेटे हुए है;

एक स्पर्श जो प्रकाशमान है,

बहुत समीप है।

एक दृष्टि जो आन्तरिक है,

धनिष्ठ है:

एक विचार,

जो शब्दों की भूलभुलैयों से मुक्त है।

एक शान्त हृदय

जिसकी सहानुभूति सबके साथ है।

एक संकल्प, जो एक-केंद्रित है,

विस्तृत है, महान् है।

(3)

हमारा विज्ञान अमूर्त है,

नीरस है, संक्षिप्त है।

जीवित समग्र को काट कर

वह सूत्रों में विभक्त करता है।

इसके पास मानस है, मस्तक है,

लेकिन आत्मा नहीं है।

हर वस्तु का जो शिल्पित,

बाहरी आकार है,

विज्ञान उसे ही देखता है।

लेकिन गहराइयों को जाने बिना

संसार जाना कैसे जा सकता है ?

दृश्य का मूल अदृश्य में है।

और अदृश्य का जो अर्थ है,

उसे हर अदृश्य किसी गंभीरतर अदृश्य में

छिपाये हुए है।

जिन चीजों को तुम थाह रहे हो,

वे वस्तुओं के असली रूप नहीं है।

प्रत्येक वस्तु उन शक्तियों का समूह है।

जो आकार पा गयी हैं।

पकड़ी जाने पर भी

इन शक्तियों की आन्तरिक रेखाएँ

छिटक कर अथाह चेतना में

चली जाती हैं,

जिनकी थाह लेना

बुद्धि के माप-दण्ड के पार है।

इस अथाह को थाहो,

वहाँ तुम्हें एक अस्तित्व मिलेगा,

जो अनन्त है, अनाम है,

नीरव है, अज्ञेय है।

देवता का श्रम

(ए गॉड्स लेबर)

(1)

मैंने रजत-शून्य में अपने स्वप्न सजा रखे हैं,

एक ओर नीलिमा, दूसरी ओर स्वर्ण-संपुट निर्मल।

रक्खा है संपुटित उन्हें कर ऊपर बड़े जतन से,

स्वप्न तुम्हारे, जो हीरों से जड़े हुए अतिशय उज्ज्वल ।

(2)

सोचा था, निर्मित कर कोई दिव्य सेतु सुरधनु

का महाकाश के साथ मही का परिणय कभी रचाऊँगा ।

जो सीमा के परे विश्व है, उसकी मनोदशा का

बीज कभी इस नृत्यशील लघु ग्रह के मध्य गिराऊँगा ।

(3)

किन्तु स्वर्ग था दूर और वह बहुत बहुत भास्वर था।

वायवीयता बड़ी तुनुक थी, स्पर्श न सह सकती थी।

इधर मृत्ति का मूल क्षीण था, गहराई थोड़ी थी,

अगर उतरती ज्योति अचानक, ठहर नहीं सकती थी।

(४)

जो भी लायेगा उतारकर दिव्य लोक को भू पर,

उसे प्रथम भू के कर्दम में स्वयं उतरना होगा।

ढोना होगा गहन भार वसुधा की हीन प्रकृति का,

काँटों से आकीर्ण पन्थ से स्वयं गुजरना होगा।

(5)

स्वयं दमित कर निज विभुत्व को मैं नीचे आया हूँ

अथम भूमि पर, मैं जिसकी धूसर रज-बीच पड़ा हूँ।

ज्ञानो, श्रमनिरत मनुज को दुर्बलता अपना कर

जन्म-मृत्यु, इन दो द्वारों के अंतर्मध्य खड़ा हूँ।

(6)

बहुत दिनों से खोद रहा हूँ गूढ़ दीर्घ परिखा को

बिना किये चिंता कर्दम की, ह्रास त्रास की, मल की।

वहे सुनहरी नदी खेय में गोत स्वर्ग का गाकर

और बसे उसमें प्रभंग मधुज्वाला अमर अनल की।

(7)

मिले मनुज को ज्योति, सोच यह, में जड़ता-रजनी से

लड़ा बहुत अपने पर उसका अत्याचार सहा है।

किंतु नरक की घृणा और विद्वेष भ्रान्त मानव का,

जब से दुनिया बनी, यही मेरा उपहार रहा है।

(8)

क्योंकि मनुज चाहता, वासना उसकी नित्य सफल हो ।

बेचारा अपने ही भीतर के पशु से हारा है।

मनमें उसने जिस पिशाच को युग से पाल रखा है,

उसे शोक प्रिय है, मनुष्य का पाप उसे प्यारा है।

(9)

यह पिशाच थर-थर करता है दिव की ज्वालाओं से ।

जो कुछ है पवित्र, सुखदायी, उसे नहीं जँचता है।

लिप्सा, लौकिक सुख, विलास से और अंत में दुख से

वह करता है राज और अपना नाटक रचता है।

(10)

चारों ओर अशांति, कलह, कोलाहल और तिमिर है।

जिस प्रदीप को मनुज सूर्य कहता है, वह द्वाभा है।

भटके हुए भ्रांत जीवन पर जो प्रकाश गिरता है,

वह अमरों की महाज्योति की बस आधी आभा है।

(11)

मनुज जला पाता है जो छोटी मशाल आशा की,

उसका प्रभापुंज बुझ जाता, शेष नहीं रहता है।

नर की सारी प्राप्ति सत्य की एक क्षुद्र कणिका है।

वह सराय है, जिसे आदमी तीर्थधाम कहता है।

(12)

सत्यों का जो सत्य, आदमी उससे भय खाता है ।

प्रस्तुत है वह नहीं चिरन्तन आभा को वरने को।

वह पुकारता मूढ़ देव को, और दनुज-वेदी पर

मनुज बैठ जाता है दानव की पूजा करने को ।

(13)

जो था पहले मिला, आज फिर उसे खोजना होगा।

क्योंकि छिन्न-मस्तक प्रतिपक्षी फिर से जी जाते हैं।

संघर्षों पर एक बार जय पाना नहीं अलम् है।

निष्फल जीवन के समक्ष वे बार-बार आते हैं।

(14)

मुझे सहस्रों घाव लगे हैं, लगते ही जाते हैं।

किंतु दानवों के प्रहार से मैं तो नहीं झुकूंगा।

जबतक परम देवकी इच्छा पूर्ण नहीं होती है,

लक्ष्य-सिद्धि के बिना भला में पथ में कहाँ रुकूंगा ?

(15)

मुझे चिढ़ाते हैं यह कहकर दनुज-मनुज, दोनों ही----

"असंभाव्य कल्पना तुम्हारी, तुम क्या विजय करोगे ?

रंग पाओगे अंतरिक्ष को किस प्रकार पावक से ?

क्रिया नष्ट होगी, असफल हो तुम व्यर्थ हो मरोगे ।

(16)

"जड़ समुद्र की छाती पर हम परित्यक्त बालक हैं

लौह नियति से बद्ध, कभी इस पर भी ध्यान गया है ?

या केवल बकवास मचाने को भू पर आये हो,

स्वर्ग लोक है सुखी, वहाँ जो कुछ है, दिव्य, नया है ?

(17)

"तिमिर क्षेत्र हो भले भूमि, पर यह घरणी अपनी है।

टिम-टिम छोटी शिखा हमारी सुथिर न रह सकती है।

यह कैसे सामना करेगी ज्वलित, दिव्य आभा का ?

देव चाहते जो, उसको भू कैसे सह सकती है ?

(18)

"चलो, चलें, वध करें स्वर्ग के इस प्रलापकारी का।

तभी हमारे हृदय मुक्त दुविधा से हो पायेंगे ।

इसके उच्च, कठोर घोष श्रवणों में नहीं पड़ेंगे।

विस्तृत, शुभ्र शांति के बंधन से भी बच जायेंगे।"

(19)

मेरे मर्त्य हृदय में पर उद्यत देवता खड़ा है

नियति, भाग्य, प्रारब्ध, भ्रान्तियों, भूलों से लड़ने को,

नामहीन, निर्मल, विराट के लिए विश्व के पथ पर

पग से रौंद कुलिश-कर्दम को चूर-चूर करने को ।

(20)

"जाओ वहाँ, जहाँ पर कोई अबतक नहीं गया था।

"खोदो, खोदो," ध्वनि कहती है, आगे सत्य कहीं है।

पहुँचो नीचे उस पत्थर पर, जिसपर नींव टिकी है।

दस्तक दो उस दर पर जिसकी कुंजी कहीं नहीं है।"

(21)

देखा मैंने, असत् वृक्ष का मूल बड़ा गहरा था।

चीजों की जड़ से असत्यता लिपटी हुई पड़ी थी।

हरि सोये थे महासर्प पर जटिल योग-निद्रा में।

भूरी नरसिंहनी भीष्म पहरे पर जगी खड़ी थी।

(22)

मन के सतह-लोक पर है जो देव और जीवन का---

जो समुद्र है असंतुप्त, दोनों को मैंने छोड़ा।

फिर शरीर की ग्रन्थ वीथियों में डुबकियाँ लगाकर

चरणों को मैंने रहस्यमय अधोलोक दिशि मोड़ा।

(23)

छाना है मैंने प्रचण्ड उर अन्तर मूक मही का

पीड़ा, आह, कराह, दर्द की घंटी वहाँ सुनी है।

देखा है वह स्रोत, जहाँ से दुःख जन्म लेते हैं।

और नरक कैसे बनता है, यह भी बात गुनी है।

(24)

मैं हूँ जहाँ, वहाँ ऊपर विषधर फुंकार रहे हैं,

पैशाचिक आवाज घुमकर क्षण-क्षण रही उबल है।

पर मैंने तो शून्य चीर उस स्थिति को देख लिया है,

जहाँ प्रथम आभा प्रकटी, पहला विचार जनमा था।

घूम चुका हूँ उस खाई में, जो नितान्त निस्तल है।

(25)

उच्च भयावह सोपानों पर मेरे चरण पड़े हैं।

कवच पहन निस्सीम शांति का रहा किंतु निश्चल मैं।

ले आया आखिर पावक में ईश्वरीय ग्राभा का ।

और उसे बो दिया मनुज के अगम, अगाध, प्रतल में।

(26)

तब भी था मैं वही, सदा जो मेरा रूप रहा था।

पर जो थे आवरण, किसी ने उनको फाड़ दिया है।

प्रभु की वाणी सुनी और मैंने उनकी इच्छा को

निज प्रशान्त, विस्तृत ललाट पर सादर वहन किया है।

(27)

गहराई जुड़ गयी शिखर से, सेतु हुआ निर्मित है।

अब स्वर्णिम जल का प्रपात नीरव, अजस्र झरता है—

उस सुनील पर्वत से, जो सुर-धनु से सजा हुआ है।

इस तट से उस तट तक जल जगमग-जगमग करता है।

(28)

दीप्त हो उठा अनल स्वर्ग का पृथ्वी की छाती में ।

अमर सूर्य अब तो जलता है इसी मृत्ति-वेदी पर ।

चमत्कार ! पड़ गया रंध्र जननान्तर के बंधन में ।

जिसने देह धरी थी, वह आत्मा अखण्ड, अविनश्वर

(29)

चाह रही बनना सत्-चित्-आनन्द-लोक की ज्वाला ।

स्वर्णरुण सोपान-मार्ग पर पग नीचे धरते हैं---

दिव के अमृत-पुत्र अनुरंजित अपनी ही आभा से ।

“उन्मूलित हो गया तिमिर, “ यह तूर्यनाद करते हैं।

(30)

तनिक और है देर, द्वार पट इस नवीन जीवन के

रचित खचित होंगे प्रकाश से, चन्द्रभूति – आभा से ।

छत होगी स्वर्णाभ और गच होगा मणिकुट्टिम का।

सारा जगत प्रकाशमान होगा अपरूप विभा से ।

(31)

अपना स्वप्न छोड़ दूंगा मैं उज्ज्वल रजत पवन में।

नील-स्वर्ण परिधान पहनकर ज्योति अलौकिक धारे

रूपांतरित इसी पृथ्वी पर तब मनोज्ञ, मंगलमय

घर कर देह करेंगे विचरण जीवित सत्य तुम्हारे !

श्री अरविंद के पद्य – अनुवाद – विमला गुप्त

महानिशा का तीर्थयात्री

मैंने महानिशा से किया एक अनुबन्ध,

विशाल खन्दक बना हमारा मिलन स्थलः

अपने सीने में प्रभु का अमर प्रकाश लिए

मैं पहुँचा उसके तमोग्रस्त और खतरनाक हृदय से आग्रह करने हेतु।

मैंने पीछे छोड़ दिया प्रकाशित मन का वैभव

एवं दिव्य आत्मा का शीतल आनन्द

और यात्रा की एक धुंधले अंधेरे विस्तार से होकर

उस तमोवृत्त तट तक जहाँ उसकी अज्ञानमय धाराएँ हैं बहती।

मैं बढ़ता रहा हूँ ठिठुरती लहरों में निश्चेष्ट पंक से होकर

और अभी तक इस थकान भरे सफर का नहीं हुआ है अन्त;

वह ज्योतिर्मय ईश्वर खो गया है काल से परे कहीं,

अब नहीं सुनाई पड़ती है उस दिव्य बन्धु की कंठ ध्वनि,

तो भी मैं जानता हूँ मेरे पद चिन्ह बनेंगे एक पगडंडी

एक गमन पथ जो ले जाता है अमरता की ओर।

श्रीमाँ की प्रार्थनाओं से उठती अभीप्सा-सुगंध

तू पूर्ण ज्ञान है, असीम चेतना है। जो तेरे साथ एक हो जाता है वह जब तक एकत्त्व में रहता है तब तक के लिए सर्वज्ञ हो जाता है। किंतु इस अवस्था को प्राप्त करने से पहले भी जो अपनी सत्ता की पूर्ण सत्यता में, अपनी समस्त इच्छाशक्ति के साथ तुझे समर्पित कर चुका है और जिसने अपने अंदर और अपने समस्त प्रभाव क्षेत्र में तेरे प्रेम के दिव्य विधान की अभिव्यक्ति और विजय में सहयोग देने के लिए पूरा प्रयत्न करने का निश्चय कर लिया है, देखता है कि उसके जीवन का सब कुछ बदल गया है और सब घटनाओं ने तेरे विधान को व्यक्त करना और उसके समर्पण को सहज बनाना प्रारम्भ कर दिया है; कि जो कुछ भी उसके लिए घटता है वही सर्वश्रेष्ठ होता है; कि एक दयालु शक्ति है जो उसकी, स्वयं उससे भी रक्षा कर रही है और उसके लिए ऐसी अनुकूल परिस्थितियाँ सुनिश्चित रही है कि उसका पुष्पन, अभिन्न रूपांतरण और सार्थकता सिद्ध हो सके।

इसके प्रति सचेतन और दृढ-निश्चयी होते ही– हमें आनेवाली परिस्थितियों की और घटनाक्रम के विकास की कोई भी चिंता नहीं रहती; परम शांति के साथ हम वहीं करते हैं जो हम सर्वश्रेष्ठ समझते हैं, हमें यह विश्वास होता है कि इसका परिणाम सर्वश्रेष्ठ ही होगा, चाहे यह वह परिणाम न भी हो जिसकी आशा, हम अपनी सीमित बुद्धि में कर रहे हैं।

प्रभु, इसीलिए हमारे हृदय में हल्कापन है, हमारा विचार 'विश्रांति' का अनुभव कर रहा है। इसीलिए हम अपने समस्त विश्वास के साथ तेरी ओर मुड़ते हैं और शांतिपूर्वक कहते हैं:

तेरी इच्छा पूर्ण हो इसी में सच्ची समस्वरता चरितार्थ होगी। तुझसे परिपूर्ण मेरा हृदय अनन्त तक फैलता हुआ प्रतीत हो रहा है और तेरी उपस्थिति से उद्भासित मेरी बुद्धि स्वच्छतम हीरे सी चमक रही है। तू अद्भुत जादूगर है, जो प्रत्येक वस्तु को रूपांतरित कर रहा है, जो असौन्दर्य से सौन्दर्य, अंधकार से ज्योति, कीचड़ से निर्मल जल, प्रज्ञान से ज्ञान और अहंकार के अंदर से दयालुता उत्पन्न करता है।

तेरे अंदर, तेरे द्वारा, तेरे लिए ही हम जीते हैं और तेरा विधान ही हमारे जीवन का सर्वोच्च स्वामी है।

तेरी अनुभूति प्राप्त करने तथा तेरे लिए अभीप्सा करने के लिए हमें पहले अवचेतना के विशाल सागर से बाहर निकलना होगा, अपने आपको निर्मल बनाना, आत्मदान करने के लिए अपने आपको जानना तथा अपनी सत्ता की रूपरेखा को समझना प्रारंभ कर देना होगा, क्योंकि केवल वही आत्मदान कर सकता है जो अपने स्वरूप को अधिकृत कर लेता है। बहुत कम व्यक्ति ही इच्छापूर्वक इन प्रयत्नों में अपने आपको लगाते हैं। धीरे–धीरे, सब बाधाओं के होते हुए भी तेरा कार्य पूर्ण होने लगता है।

क्षितिज कितना विस्तृत हो जाता है, ज्यों ही हम इस वृत्ति को ग्रहण करना सीख जाते हैं; सब प्रकार की चिंताएँ समाप्त हो जाती हैं और अपना स्थान स्थिर प्रकाश को, नि:स्वार्थता की समस्तशक्ति को दे देते हैं।

हे प्रभु, जो तू चाहे वही चाहने का अर्थ है तेरे सतत संपर्क में निवास करना, समस्त घटनाओं से मुक्त होना, समस्त संकीर्णताओं से बचना, अपने फेफड़ों को शुद्ध और स्वास्थ्यकारी वायु से भरना, निरर्थक भ्रांति से छुटकारा पाना, समस्त कठिन बोझों से हलका होना, जिससे व्यक्ति अपने चौकस पगों से उस एकमात्र लक्ष्य की ओर दौड़ सके जो प्राप्त

करने के योग्य है: वह है तेरे दिव्य विधान की विजय!

हे प्रभु, प्रेम के दिव्य स्वामी, उनकी चेतना और उनके हृदय को आलोकित कर। अपनी करूणा के कारण तू समस्त सद्भावना को उचित विकास प्रदान करता है ऐसी कृपा कर कि तेरी उत्कृष्ट उपस्थिति की परम शांति उनके अंदर जागृत हो जाए !

वर्तमान अभिव्यक्ति में सब कुछ अनिवार्य रूप से मिला-जुला है। सबसे बुद्धिमत्ता की बात यह होगी कि हम यथासक्य श्रेष्ठतम प्रयत्न करें, उत्तरोत्तर उच्च प्रकाश की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील हों और यह स्वीकार करें कि चरम पूर्णता इसी क्षण चरितार्थ नहीं हो सकती।

फिर भी हमें क्या उस अगम पूर्णता के लिए उत्साह पूर्वक अभीप्सा नहीं करनी चाहिए! जब कोई भला या बुरा काम हो जाए उस समय जो सच्चा विचार व्यक्ति के अंदर आना चाहिए वह यह नहीं कि मुझे कार्य अधिक अपनी तरह करना चाहिए या इसकी जगह यह करना चाहिए था वरन् यह कि-"मैं उस नित्य चेतना के साथ पर्याप्त रूप में एक नहीं हुआ था मुझे इस निश्चित और पूर्ण ऐक्य को अधिकाधिक चरितार्थ करने का प्रयत्न करना चाहिए ।"

इस उपलब्धि को पूर्ण बनाने के लिए यह एक ऐसी चीज़ है जिसकी आशा मैं भारतवर्ष की यात्रा से करती हूँ, पर हाँ, तभी, यदि तू हे प्रभु! इसे अपनी सेवा के लिये उपयोगी समझता हो। ऐसी कृपा कर कि मैं तेरा कार्य कर सकूँ, तेरी पूर्ण अभिव्यक्ति में योग दे सकूँ।

मैं जानती थी कि तेरी उपस्थिति के लिए आह्वान करना कभी निरर्थक नहीं जाता और यदि हम अपने हृदय की सच्चाई से किसी भी शरीर द्वारा, वैयक्तिक शरीर अथवा मानवीय सामूहिक सत्ता द्वारा, तेरे साथ संपर्क स्थापित करें तो उस शरीर की अवचेतना-अज्ञान के रहते भी पूर्णतया रूपांतरित हो जाती है।

प्रभु मेरी तीव्र कृतज्ञता तेरी ओर उठ रही है, जिसमें दु:खी मानव जाति की कृतज्ञता भी शामिल है जिसे तू आलोकित, रूपांतरित और गौरवान्वित करता है, गौरव तथा ज्ञान की शांति प्रदान करता है।

अपने प्रस्थान के समय से सदा अधिकाधिक ही, हम वस्तुओं में तेरा दिव्य हस्तक्षेप देख रहे हैं, सर्वत्र ही तेरा विधान अभिव्यक्त हो रहा है और मुझे इस बात का आंतरिक विश्वास हो जाना चाहिए कि यह सहज और स्वाभाविक है, जिससे मैं आश्चर्य न अनुभव करती रहूँ।

किसी भी क्षण मुझे ऐसा प्रतीत नहीं होता कि मैं तुझसे बाहर रहती हूँ और क्षितिज मुझे कभी इतना विशाल और गहराइयाँ इतनी आलोकित और इतनी अथाह प्रतीत नहीं हुईं। ओ दिव्य गुरु, वर दे कि हम पृथ्वी पर अपने कार्य को

अधिकाधिक जान जाएँ और अधिक से अधिक अच्छी तरह सम्पन्न कर सकें। हम अपने अंदर की समस्त शक्ति का पूर्णतया उपयोग करें, और तेरी सर्वोच्च उपस्थिति हमारी आत्मा की नीरव गहराइयों में, हमारे समस्त विचारों, भावों तथा कर्मों में उत्तरोत्तर पूर्ण रूप से व्यक्त हों ।

तुझे इस प्रकार सम्बोधन करना मुझे कुछ विचित्र सा लगता है, क्योंकि तू ही तो मेरे अंदर निवास करता है, विचार करता है और प्रेम करता है।

ओ तू, जिसे हमें जानना चाहिए, समझना चाहिए, अनुभव करना चाहिए, हे पूर्ण चैतन्य, सनातन नियम, तू जो हमारा पथ-प्रदर्शन करता है, हमें आलोकित, निर्धारित तथा प्रेरित करता है, ऐसी कृपा कर कि ये निर्बल आत्माएँ सशक्त हो सकें और भीरू पुनः आश्वस्त हो उठें। इस सबको मैं तेरे हाथों में उसी तरह सौंपती हूँ जैसे मैं सबकी पूर्ण नियति तुझे सौंपती हूँ।

उनकी उपस्थिति में जो तेरे पूर्ण सेवक हैं, जो तेरी उपस्थिति की पूर्ण चेतना उपलब्ध कर चुके हैं, मैंने यह अतिशय रूप में अनुभव किया कि मैं अभी उससे, जो मैं चरितार्थ करना चाहती हूँ बहुत दूर हूँ और अब मैं जान गई हूँ कि जिसे मैं उच्चतम, श्रेष्ठतम और पवित्रतम समझती हूँ वह, उस आदर्श की तुलना में जिसे अब मुझे मानना होगा, अंधकार और अज्ञान है। परंतु यह अनुभव, निरुत्साहित करना तो दूर रहा, अभीप्सा एवं साहस को तथा बाधाओं पर विजय पाकर अंत में तेरे विधान और तेरे कर्म के साथ तद्रूप हो जाने के संकल्प को प्रेरित तथा पुष्ट करता है।

थोड़ा-थोड़ा करके आकाश स्पष्ट होता जा रहा है, रास्ता साफ़ होने लगा है और हम उत्तरोत्तर अधिक निश्चयात्मक ज्ञान में बढ़ते जा रहे हैं।

अधिक चिंता नहीं यदि सैकड़ों मनुष्य अंधकार में डूबे हुए हैं। वे, जिन्हें हमने कल देखा है वो पृथ्वी पर ही हैं; उनकी उपस्थिति मात्र ही इस बात का प्रमाण है, आश्वासन है कि एक दिन आएगा जब अंधकार प्रकाश में परिवर्तित हो जाएगा, और जब तेरा राज्य धरती पर निश्चित रूप में स्थापित होगा।

हे नाथ, इस आश्चर्य के दिव्य रचयिता , जब मैं इसका चिंतन करती हूँ तो मेरा हृदय आनंद और कृतज्ञता से उमड़ उठता है और मेरी आशा असीम हो जाती है।

मेरा आदर शब्दातीत हो जाता है, मेरी श्रद्धा मौन हो जाती है।

-- मार्च 1914 के श्रीमाँ के चेतना-यज्ञ-कुण्ड से

सावित्री

लक्ष्मीनिवास झुंझुनवाला

अश्वपति की अठ्ठाह वर्ष की तपस्या से सावित्री संतान रूप में प्राप्त होती है। सावित्री के कला, शिल्प, ज्ञान अर्जन करने पर पिता उन्हें स्वयं ही वर खोजने भेज देते हैं। सावित्री सत्यवान का चयन कर पिता को सूचना देने लौटती है। वहीं नारद मुनि आते हैं तथा बताते हैं कि सत्यवान की आयु केवल एक वर्ष शेष रहती है। सावित्री की माँ उसे दूसरे व्यक्ति का चयन करने को कहती है, पर सावित्री अटल है। सत्यवान के पास लौट जाती है। सत्यवान की मृत्यु हो जाती है। सावित्री यमराज से सत्यवान का पुनर्जीवन प्राप्त करने में सफल हो सत्यवान के साथ पुन: पृथ्वी पर लौट आती है। यह सावित्री की अत्यंत संक्षिप्त कथा है।

'रेमंड फ्रेंक पाईपर' अमेरिका के विद्वान थे। उन्होंने कहा कि यह शायद अंग्रेजी भाषा का सबसे लंबा काव्य है। वे फिर कहते हैं, "मैं इसे अत्यंत व्यापक, एकीकृत, सुंदर, श्रेष्ठ वैश्विक कृति मानता हूँ। ऐसी कृति आज तक दूसरी नहीं लिखी गई है। इसका क्षेत्र आदिकालीन ब्रह्मांड के शून्य से प्रारंभ होकर पृथ्वी के अंधकार से संघर्ष की यात्रा करता हुआ सर्वोच्च अतिमानस के आध्यात्मिक स्तर पर स्थिर होकर मानव की प्रत्येक गतिविधि को प्रकाशित करता है। इस काव्य में अद्वितीय विशालता व भव्यता है। सावित्री शायद विश्व की सर्वोच्च शक्तिशाली कलाकृति है जो मानव मन को परब्रह्म तक पहुँचाने में समर्थ है।

"मानव इतिहास में अनेक महान, दयामय, प्रेम प्रदान करनेवाले व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने विश्व के सारे दुखों व कष्टों को मिटाने का प्रयास किया है। कुछ लोगों के आँसू पोंछने में उन्हें सफलता भी मिली है। परंतु पृथ्वी पर दुख व कष्ट का शासन मिटा नहीं है। वही समस्या शक्ति व बल की है। विज्ञान ने मानव को इतनी शक्ति दे दी है कि कम से कम वह जगत से भूख व बीमारियों को मिटा दे। पर क्या मानव थोड़ा भी इस दिशा में सफल हो पाया है?

"अपने पहले के अवतार में भगवान ने अर्जुन के लिए गीता गायन किया। सीधी-सादी गोपियों के हृदय को अपने बाँसुरी वादन से अपने स्तर पर ले आए। इस नए अवतार में उन्होंने अनुभव किया कि इस युग की आत्माओं को मंत्रमुग्ध करने के लिए सावित्री के संगीत, लय व उसके यांत्रिक प्रभाव की सरिता में बहने के लिए उन्हें छोड़ देना है।"

1. श्रीअरविन्द की रचनाओं में 'सावित्री' का अनेक तरह से विशिष्ट स्थान है। यह एक ऐसी कृति है, जिस पर श्रीअरविन्द ने कठिन परिश्रम किया है व लंबा समय लगाया है। सावित्री का सबसे प्रथम लेखन श्रीअरविन्द के बड़ौदा प्रवास 1904 से प्रारंभ होता है। उन्होंने बार-बार इसका संशोधन किया। प्रश्न उठता है कि श्रीअरविन्द की इतनी प्रतिभा तथा सृजनशीलता होने पर भी उन्होंने 'सवित्री' की रचना में पचास साल कैसे लगा दिए। सवित्री में ऐसी क्या विशिष्टता है? 1904 के आस-पास ही उन्होंने दो और रचनात्मक काव्य लिखे-(1) उर्वशी (2) प्रेम व मृत्यु। किंतु महाभारत के वन पर्व की 'सावित्री' के प्रति श्री अरविन्द का विशेष आकर्षण था। ये तीनों कृतियाँ, 'उर्वशी', 'प्रेम व मृत्यु', व 'सावित्री' एक तरह से एक ही विषय के भिन्न-भिन्न पक्ष हैं| तीनों कृतियों के मूलभूत तत्त्व प्रेम, मृत्यु व पृथ्वी पर जीवन हैं। उर्वशी अचानक अपने स्वर्गीय आवास में लौट जाती है। पुरुरवा भी उसके पीछे-पीछे आ जाता है। पुरुरवा का उर्वशी से मिलना तो हो जाता है पर उसे इसका बड़ा मूल्य चुकाना पड़ता है। उसे अपना पृथ्वी का जीवन, अपना राज्य व अपने व्यक्तियों को छोड़ना पड़ता है। 'प्रेम व मृत्यु' में प्रियंवदा को साँप काट लेता है। उसका प्रेमी रुरु उसका पीछा कर पाताल पहुँच जाता है। रुरु को प्रेमिका के साथ पृथ्वी पर लौटने की भारी कीमत चुकानी पड़ती है। उसे पृथ्वी के जीवन के आधे भाग का त्याग करना पड़ता है। दोनों कथाओं में प्रेम की मृत्यु पर विजय होती है, पर पृथ्वी के जीवन का बलिदान देना होता है।

'सावित्री' की कथा में सत्यवान की मृत्यु हो जाती है। सावित्री उसके पीछे-पीछे मृत्यु लोक में पहुँच जाती है। वह बहादुरी से अंधकार व मृत्यु से संघर्ष करती है। आखिर प्रेम की विजय होती है। सावित्री पुन: पृथ्वी पर लौट आती है व सत्यवान के साथ सुखपूर्वक जीवन बिताती है। उसे पृथ्वी के जीवन का बलिदान नहीं देना पड़ता। इस कथा के प्रति यही श्रीअरविन्द के विशेष आकर्षण का कारण था। सत्यवान वह आत्मा है, जिसमें दिव्य शब्द है। सावित्री सूर्य की पुत्री है। परम सत्य की देवी का अवतरण करवाने के लिए अश्वपति का जन्म होता है। अश्वपति सावित्री का मानवीय पिता है। तपस्या का प्रभु; आध्यात्मिक प्रयास की केंद्रिक शक्ति है, जो हमें मर्त्य जगत से अमर जगतों में प्रवेश करने में मदद करती है| ध्युमत्सेन दीप्तिमान सत्यवान का पिता है। वह दिव्य मन है, पर अंधा हो गया है। ऐश्वर्य के स्वर्गीय राज्य को वह खो चुका है। यह केवल रूपक नहीं है। पात्र गुणों के मानवीकरण मात्र नहीं हैं, पर जीवंत तथा चेतन शक्तियों के अवतार हैं, जिनसे हम वास्तव में संपर्क कर सकते हैं। वे मानव की सहायता के लिए और उसे मर्त्य अवस्था से दिव्य चेतना व अमर जीवन की राह दिखाने के लिए मानव शरीर धारण करते हैं। श्रीअरविन्द ने इस महाभारत कथा में नवीन जीवन का संचार कर दिया है। फलस्वरूप 'सावित्री' श्रीअरविन्द के विचारों व अंतर्दृष्टि की श्रेष्ठतम भावाभिव्यक्ति हो गई है। श्रीअरविन्द ने अपने एक प्रारंभिक पत्र में माताजी को लिखा था, स्वर्ग पर तो हमने अधिकार कर लिया है, पर पृथ्वी पर नहीं।

2. श्रीअरविन्द संभवत: विश्व के एकमात्र आध्यात्मिक दार्शनिक हैं, जो मानते हैं कि मानवजाति का संसार में ही भविष्य है। इस पृथ्वी पर ही जीवन के पूर्णत्व की प्राप्ति है। बाकी सारे आध्यात्मिक दार्शनिक यह मानते हैं कि मानव के लिए प्रथ्वी पर पूर्णता प्राप्त करना अंसभव है। मृत्यु के बाद ही पूर्णता की स्थिति प्राप्त की जा सकती है। श्रीअरविन्द के योग का लक्ष्य इस प्रथ्वी पर ही दिव्य जीवन के चमत्कार को यथार्थ करके दिखाना है। अब स्पष्ट है कि 'सावित्री' की कथा में श्रीअरविन्द ने सावित्री की परमवीरता में इसी धरा पर जीवन की वीरता का बीज पाया। जैसे-जैसे श्रीअरविन्द रूपान्तरण के योग में प्रगति करते गए, वे सावित्री की कथा में संशोधन करते गए। प्रत्येक मुख्य सिद्धि उन्हें उच्चतर चेतना के शिखर पर ले जाती गई तथा वे उस नवचेतना के स्तर पर 'सावित्री' को पुन:पुन: लिखते गए। उन्होंने अपने एक पत्र में इसे स्पष्ट किया है-"मैंने 'सावित्री' को आरोहण का एक साधन माना है। मैंने इसे एक मानसिक धरातल पर लिखना आंरभ किया। जैसे-जैसे मैं उच्च चेतना की स्थिति में आता गया मैंने 'सावित्री' को नई चेतना के धरातल से लिखा।"

3. भगवान ने अपने पहले के अवतार में अर्जुन को व उनके ही तरह के जिज्ञासुओं के लिए भगवद्गीता का गायन किया। उसी के साथ-साथ सीधी-सादी गोपियों के हृदय को, उनकी चेतना को अपनी बाँसुरी के वादन से अपने स्तर पर ले आए। गोपियों को इसके लिए कोई प्रयास नहीं करना पड़ा, पर कृष्ण की मुरली के माधुर्य में अपने ही प्रवाहित होने में बाधा उत्पन्न नहीं की। इस नए अवतार में परमप्रभु ने 'आर्य' के लेखों में नई भगवदगीता लिखी। आगामी अतिमानव के लिए नए योग का पथ-प्रदर्शन किया। अपनी असीम करुणा व मानव प्रेमवश उन्होंने अनुभव किया कि इस युग की गोपी-आत्माओं को मंत्रमुग्ध करने के लिए 'सावित्री' के संगीत की आवश्यकता है। प्राचीन युग की गोपियों की तरह हमें भी 'सावित्री' के संगीत, लय व उसके मांत्रिक प्रभाव की सरिता में बहने के लिए छोड़ देना है। तत्पश्चात हम निश्चय ही चेतना की उच्च से उच्चतर स्थितियों में आरोहण करने में समर्थ होंगे। 'सावित्री' श्रीअरविन्द की कृपा का मानव को ईश्वरीय वरदान है। अनेक शताब्दियों से मानव मस्तिष्क को मनोवैज्ञानिक खाई ने घेर रखा था। श्रीअरविन्द ने इस खाई को भर दिया है। प्राचीन जगत में कविता अतींद्रिय रहस्योदघाटन का माध्यम थी। प्रत्येक मानव के हृदय में निवास करने वाला शाश्वत सत्य इसका विषय था। कवि, मनीषी, भविष्यवक्ता, एक चमत्कारी व्यक्तित्व का धनी था। उसकी वाणी मंत्र थी, सम्मोहन की थी। क्रमश: मानव में उद्दंडता का जन्म हुआ, विभेदनकारी मस्तिष्क ने आत्मा की हत्या कर दी। अद्वैत से द्वैत हुआ। मस्तिष्क ने हृदय का साथ छोड़ दिया। ज्ञान भावनाविहीन हो गया। 'सावित्री' ने इस दरार को भर दिया है। 'सावित्री' न तो व्यक्तिनिष्ठ कल्पना है, न दार्शनिक विचार। यह दिव्यदृष्टि व रहस्य का उदघाटन है, ब्रह्मांड की आंतरिक रचना है। यह मानव जीवन की तीर्थ यात्रा है।

4. भू,भुव:, स्व:। उच्चतम लोकों की सीढ़ी है।

5. "सावित्री में अकेले में भी क्षमता है कि यह आपको सीढ़ी के उच्चतम स्तर पर ले जाए। यदि इस पर ध्यान केंद्रित कर सकें तो जो भी सहायता चाहिए, वह इसमें उपलब्ध है। जो इस मार्ग पर चलने का इच्छुक है, उसकी यह यथार्थ सहायक है, मानो प्रभु स्वयं आपकी अंगुली पकड़ लक्ष्य की ओर ले जा रहे हैं । प्रत्येक प्रश्न का चाहे वह कितना भी व्यक्तिगत हो, उसका उत्तर यहाँ है। प्रत्येक कठिनाई का समाधान यहाँ है। योग करने के लिए जो भी चाहिए, वह सब इसमें है। यह चमत्कारिक कृति है, भव्य है। इसकी पूर्णता अद्वितीय है, माताजी ने ठीक ही कहा है, "इसकी चिंता मत करो कि यह तुम्हारी समझ में नहीं आती पर नित्य पढ़ो अवश्य। तुम पाओगे कि प्रत्येक बार तुम्हें कुछ नया मिलेगा, नए अनुभव होंगे। पर इसको अन्य पुस्तकों की तरह नहीं पढ़ना। इसे खाली मस्तिष्क से, रिक्त व शून्य मस्तिष्क से पढ़ना। उस समय मस्तिष्क में अन्य विचार न हों । तब 'सावित्री' के शब्द, संगीत, तरंगें छपे पृष्ठ से तुम्हारे मस्तिष्क पर अंकित हो जाएँगी। तुम्हें सब समझा देंगी।"

6. यह पौराणिक कथा महाभारत से ली गई है। महाभारत में यह सात सौ पंक्तियों के सात संक्षिप्त सर्गों में लिखी गई है। श्रीअरविन्द के हाथों ने इस संक्षिप्त कथा को वैश्व महाकाव्य का रूप दे दिया है। तीन भागों, 12 पर्वों व 42 सर्गों में विभाजित यह अंग्रेज़ी भाषा की सबसे लंबी कृति है। इसका विस्तार करीब चौबीस हज़ार पंक्तियों में श्रीअरविन्द ने किया है। महाभारत से यह पैंतीस गुणा बड़ी है। श्रीअरविन्द ने सीधी पौराणिक कथा को वैश्विक महत्व के काव्य में रूपांतरित कर दिया है। यही कारण है इस विस्तार का। महाभारत की कथा में अश्वपति मद्र देश का श्रेष्ठ सद्गुणी राजा है। उसे जीवन की सारी सुख-सुविधाएँ प्राप्त हैं, पर संतानसुख से वंचित है। संतान-प्राप्ति के लिए वह अठ्ठारह वर्षों तक कठोर तपस्या करता है। सवित्री देवी प्रसन्न हो, उसे दर्शन देकर शीघ्र ही एक पुत्री के जन्म होने का वरदान देती हैं। श्रीअरविन्द का अश्वपति राजर्षि है, प्रबुद्ध मानवजाति का प्रतिनिधि व नेता है। वह भी अभीप्सारत है, पर उसका उद्देश्य व्यक्तिगत संतान-प्राप्ति मात्र नहीं है। उसका अनुसंधान उस सृजनात्मक सिद्धांत के लिए है , जिसमें मानव की व्याधियों, असंतोष व निराशा को मिटाने की क्षमता हो। आज तक किसी विचारक, सुधारक व क्रांतिकारी ने इस पृष्ठभूमि में नहीं सोचा -अवतारों ने भी नहीं। अश्वपति ने उस ज्ञान व प्रज्ञा की उपलब्धि कर ली है। उसी को वह प्राच्य व पाश्चात्य को प्रदान कर रहा है। इसके लिए यह तथ्य अत्यंत कष्टपूर्ण है कि जंजीरों से मुक्त नहीं कर सके हैं। युगों-युगों से मनुष्य भगवत प्राप्ति, प्रकाश, बंधनमुक्ति व अमरत्व प्राप्त की साधना में लगा है। क्या इसकी शाश्वत आकांक्षा पृथ्वीलोक में पूर्ण हो सकती है?

7. वास्तव में तो अश्वपति की योग-साधना श्रीअरविन्द की ही तपस्या है। श्रीअरविन्द की ही तरह अश्वपति भी मानव की मूल चेतना में परिवर्तन के रहस्य का ज्ञान प्राप्त करना चाहता है, ताकि पृथ्वी पर जीवन पूर्णत्व को प्राप्त कर सके। इसी उद्देश्य से श्रीअरविन्द का अश्वपति कठोर साधना करता है। अश्वपति को यह बोध प्राप्त हो जाता है कि ईश्वर ने ही मानव प्रकृति का रूप धारण किया है। मनुष्य अकेला इस लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकता। एक उच्च शक्ति को ऊपर से अवरतण कर उसकी सहायता करनी होगी। वह यह भी समझ रहा है कि मनुष्य के जीवन की समस्याओं का समाधान न तो जीवन से पलायन कर आत्मा में प्रवेश करने में है और न आत्मा की अस्वीकृति में है। समाधान है पृथ्वी पर नवीन सृष्टि की रचना में, मानवीय चेतना में परिवर्तन कर उसे परम चेतना यानी अतिमानसिक चेतना तक ले जाने में। अश्वपति को इस महान कार्य में अग्रसर होने के मार्ग पर प्रकाश की झलक दिखती है। इस महान कार्य के लिए वह प्रेरणा प्राप्त करता है। अब वह अपनी अंतर्यात्रा की समाप्ति कर दिव्य माता के दर्शन प्राप्त करता है। दिव्य माता ने उसे सलाह दी कि यह इसी में संतुष्ट रहे क्योंकि समस्त मानवजाति अभी ऐसे दिव्य जीवन के वरदान को वहन करने के लिए तैयार नहीं है। अश्वपति को केवल अपनी व्यक्तिगत मुक्ति व तज्जनित आनंद प्राप्त करने में कोई रुचि नहीं है। मानव युगों से अपनी अभीप्सा पूर्ण करने का प्रयत्न कर रहा है। अश्वपति को अत्यंत वेदना हो रही है कि अभी भी मानव सफल नहीं हो सका है। अंतत: वह दिव्य माता से मानव जाति की ओर से प्रार्थना करता है कि भगवती कृपा

का अवतरण भू-वासियों के जीवन में हो। अश्वपति की सभिभूत प्रार्थना से दिव्य माता द्रवित हो जाती हैं। उनकी कृपा का अवतरण पृथ्वी पर होने और प्रकृति के विनाश को बचा लेने का आश्वासन अश्वपति को देती हैं ।

8. फलस्वरूप सावित्री का जन्म होता है। सावित्री अब अपने यौवन में पदार्पण कर चुकी है। कला व शिल्प, ज्ञान की सारी विधाओं पर उसने अधिकार कर लिया है। उसकी प्रज्वलित आंतरिक शक्ति उतनी ही सुस्पष्ट है, जैसी उसकी असाधारण सुंदरता। पिता अश्वपति उसके लिए उचित वर खोजने की चिंता कर रहे हैं। उसी समय वे एक ऐसी वाणी सुनते हैं कि सावित्री का प्रारब्ध असाधारण है तथा जीवन की राह उसे एक असाधारण गंतव्य की ओर ले जाएगी। अश्वपति उसे स्वयं ही वर खोजने के लिए भेज देते हैं। नैसर्गिक प्रेम व प्रारब्ध उसकी प्रतीक्षा कर रहा है। सावित्री अपनी खोज पर निकल पड़ती है। सत्यवान से मिल सावित्री उसकी ओर आकर्षित हो जाती है। उसे वैवाहिक वरमाला पहनाकर पूजा करते हुए अपने हाथों से उसके चरण स्पर्श करती है। सत्यवान सावित्री को प्रेमालिंगन में बद्ध कर लेता है।

9. अब आनंदपूर्ण नववधू बनने वाली सावित्री शीघ्रतापूर्वक पिता के पास आकर बताती है कि उसका काम पूर्ण हो गया है। स्वर्ग-दूत नारद संयोगवश अश्वपति के पास उस समय पहुँचते हैं। अश्वपति की दिव्य दृष्टि सत्यवान के ऊपर एक अशुभ छाया को देखती है पर वह आश्वस्त हो जाता है, जब वह देखता है कि अचानक एक चमत्कारी प्रकाश उस छाया को भगा देता है। सावित्री के निर्णय को वह अपनी स्वीकृति दे देता है। अश्वपति व नारद की वार्ता से सावित्री की माँ चिंतित हो जाती है। उसे लगता है कि कुछ अशुभ होने वाला है जिसे उससे छिपाया जा रहा है। वह नारद से उसे सत्य बताने की प्रार्थना करती है। नारद कह देते हैं कि बारह महीने बाद सत्यवान को शरीर त्याग करना पड़ेगा।

10. यह भविष्यवाणी सुनकर कि सत्यवान केवल एक वर्ष तक ही जीवित रहेंगे, सावित्री की माता दु:खी हो जाती है और सावित्री को एक बार पुन: अपने पति का चुनाव करने के लिए प्रेरित करती है। किंतु सावित्री अपने संकल्प पर दृढ़ है और दूसरे पति की खोज के लिए जाने से इनकार करती है। यहाँ जिन शब्दों में सावित्री भाग्य को चुनौती देती है, उससे पहली बार उसके वीरोचित साहस व शक्ति का संकेत मिलता है। सावित्री की माँ चिंता से व्याकुल व हताश हो नारद के समक्ष कहती है, सावित्री ने ऐसा क्या किया है, जिससे इसे ऐसा दुर्भाग्य मिला है? सावित्री क्यों ऐसे नवयुवक से मिली तथा उससे प्रेम करने लगी, जिसकी आयु में केवल बारह महीने शेष बचे हैं? किसने ऐसी भयानक सृष्टि का निर्माण किया है जहाँ सब वस्तुओं पर दु:ख व कष्ट की छाया व्याप्त है? ईश्वर कैसे इतना निर्दयी हो सकता है कि ऐसी सृष्टि का निर्माण करे? क्या यह ईश्वर है या ऐसी कोई शक्ति है, जिस पर ईश्वर का अधिकार नहीं है? ईश्वर इतना हृदयहीन व संसार के दु:ख कष्टों व अशुभ के प्रति उदासीन कैसे हो सकता है?

11. नारद सावित्री की माँ को समझाते हैं कि जो पृथ्वी को बचाने के लिए अवतिरत होते हैं, उन्हें पृथ्वी के कष्टों को सहन करना पड़ता है जैसे ईसामसीह को करना पड़ा था। जगत को बचाने के लिए देवदूत को अशुभ व दु:ख के अंतर में उतर कर ही विपरीत स्थिति में परिवर्तन करना पड़ता है। ईसामसीह के जीवन व बलिदान की यही भव्यता है। हमने देखा कि नारद ने सावित्री की माँ से अनुरोध किया कि वह सावित्री और उसके प्रारब्ध के मध्य बाधक न बने। अपने माता-पिता का आशीर्वाद ले सावित्री तपोवन में लौटकर सत्यवान के साथ नए जीवन का प्रांरभ करती है। सत्यवान से मिलने के उपरांत सावित्री के जीवन का प्रत्येक क्षण आत्मपूर्ति के आनंद में भावविभोर हो बीत रहा है। भविष्य का पूर्व ज्ञान कि सत्यवान के जीवन के कुछ दिन ही शेष बचे हैं, इस आनंद को अत्यंत कष्ट में परिवर्तित कर रहा है। सावित्री वीर है, दृढ़ है, ईश्वरसम है-पर इसका मानवीय अंतर असहाय देख रहा है कि प्रारब्ध ने उसे मात्र बारह महीनों का आनंद प्रदान किया है और वह इस दु:ख से संतप्त है। सावित्री का व्यक्तिगत दु:ख विश्व के दु:ख का प्रतिनिधित्व करता है। वह क्या करे? मानवीय सीमाओं के परे कैसे जाए? क्या मानव के लिए प्रारब्ध को चुनौती देना संभव है? क्या हम केवल प्रारब्ध को ललकारकर उस पर विजय प्राप्त कर सकते हैं ? जब सावित्री प्रारब्ध को लेकर चितांमग्न है उसके अंतर से एक आवाज़

उठती है-इसे प्रेरित करती है कि उठो व मृत्यु पर विजय प्राप्त करो। वही अंतर से उठती वाणी सावित्री को उसके जीवन का उद्धेश्य बताती है।

12. जगती के अज्ञान व मृत्यु पर विजय पाने की इच्छा से ही सावित्री का जन्म हुआ है। इसीलिए इसे अपने जीवन में तीव्रतम कष्ट अपने पति सत्यवान की मृत्यु पर भोगना पड़ रहा है। मानव की सतही शक्तियाँ, उसका हृदय, उसकी इच्छाशक्ति, उसकी बुद्धि अभी तक इस समस्या का समाधान नहीं कर पाई है। मानव की असली शक्तियाँ इन स्तरों से ऊपर हैं। पर उन शक्तियों का लाभ उठाने के लिए मानव को अपने अंतर की सच्ची सत्ता अपनी आत्मा को सामने लाकर अपनी प्रकृति को अनुशासित करना होगा। तभी मानव अज्ञान और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर सकेगा। इसी वाणी को सुन सावित्री ने अपनी आत्मा की खोज में अपने अंतर में प्रवेश किया। सावित्री त्रिरात्र का प्रण करती है। अपने पतिवर्त्य की शक्ति का आह्वान करने के लिए अपने को तीन दिन और तीन रात की तपस्या कर, पवित्र करती है। श्रीअरविन्द की रचना में अश्वपति के योग की तरह ही सावित्री के योग का भी भव्य वर्णन है तथा मानव के अंतर क्षेत्र का अन्वेषण है। पर सावित्री का मार्ग अश्वपति के मार्ग से भिन्न है।

13. उसकी यात्रा का भी प्रारंभ जीवनशक्ति व बुद्धि के क्षेत्र से ही होता है। फिर वह एक ऐसे प्रदेश में आ जाती है, जहाँ उसे अंतरात्मा की तीन देवियों (Madonnas) के दर्शन होते हैं। ये है वैश्व उर्जाएँ या ईश्वरीय शक्तियाँ, जो वर्तमान में भी मानव जीवन में सक्रिय हैं। प्रथम है, सहानुभूति व प्रेम की देवी, दूसरी है शक्ति व बल की देवी तथा तीसरी है प्रकाश व प्रज्ञाशक्ति की देवी। ये तीनों ही दावा करती हैं कि वे सावित्री की आत्मा हैं , जिसे सावित्री खोज रही है। इसमें सबसे रहस्योदघाटक तथ्य यह है कि प्रत्येक शक्ति के साथ एक आसुरी विकृति है, जो मानव स्वभाव में सक्रिय है। वे भी सावित्री को आकृष्ट करती है। सावित्री का त्रिविध शक्तियों से मिलन व उनके साथ ही आसुरी विकृतियाँ मानव इतिहास के एक-दूसरे पक्ष को उदघाटित करती हैं । मानव इतिहास में अनेक महान, दयामय व प्रेम प्रदान करने वाले व्यक्ति हुए हैं, जिन्होंने विश्व से सारे दुख व कष्टों को पूरा मिटाने का प्रयास किया है। कुछ लोगों की आँखों के आँसू पोंछने में उन्हें सफलता भी मिली है, पर पृथ्वी पर दुःख व कष्ट का शासन मिटा नहीं है। वही समस्या शक्ति व बल की है। विज्ञान ने मानव को इतनी शक्ति दे दी है कि कम से कम वह जगत से भूख व बीमारियों को मिटा दे। पर क्या मानव थोड़ा भी इस दिशा में सफल हो पाया है? अत्यंत उच्च नैतिक स्तर के बुद्धिमान साधु-महात्मा विश्व में आए हैं। पर आज भी तो मानव जाति अज्ञान व मृत्यु से जूझ रही है।

14. अत: सावित्री इन त्रिविध शक्तियों से कहती है कि ये तीनों सावित्री की आत्मा के ही अंग हैं। मानव की सहायता के लिए उनका अवतरण हुआ है। मानव ने सभ्यता व संस्कृति में जो कुछ भी उपलब्धियाँ की हैं, वे इन शक्तियों के कारण ही की हैं। पर ये सभी शक्तियाँ अपूर्ण हैं तथा मानव का उद्धार नहीं कर सकतीं। इसके लिए अन्य शक्तियों की आवश्यकता है। ये शक्तियाँ मानव के कुछ वीरतापूर्ण अंशों को तो हमें दिखलाती हैं, पर इस संघर्ष में वैश्विक पूर्णता के लिए विजय करने में वे सफल हुई हैं। उसकी विकृतियाँ व आसुरी शक्तियाँ मानव के उच्चतम विकास में बाधा डाल रही हैं । उसे स्वार्थवाद, अहंभाव, दिखावा, बहादुरी की शेखी बघारने, नैतिकता की छवि चित्रण करने में एक तरह का भ्रष्ट आनंद आता है। असुर की वाणी सुनिए जो प्रेम व करुणा की विकृति है।

साहस

साहस का अर्थ है भय के किसी भी रूप की पूर्ण अनुपस्थिति। भय एक प्रकार की अपवित्रता है, सबसे बड़ी अपवित्रताओं में से एक है, उनमें से एक जो सीधे उन भगवद्विरोधी शक्तियों से आती हैं, जो पृथ्वी पर भागवत कार्य को नष्ट कर देना चाहती हैं।

ईश्वर के मार्ग पर चलने के लिए हमें निर्भीक होना चाहिए,-और कभी भी उस क्षुद्र, तुच्छ, दुर्बल, निकृष्ट, अपनी ही ओर सिकुड़ जाने के भाव को, जो कि भय है, प्रश्रय नहीं देना चाहिए। एक अदम्य साहस, एक पूर्ण निष्ठा और आत्मदान, जो इतना सच्चा हो कि मनुष्य न तो हिसाब लगाए, न तोल-मोल करे, लेने की भावना से न दे, संरक्षण पाने की भावना से निर्भरशील न हो, ऐसी श्रद्धा जो न प्रमाण माँगती हो, बस, यही चीज़ इस पथ पर चलने के लिए अनिवार्य है, बस यही चीज़ है जो वास्तव में तुम्हें सभी ख़तरों में सुरक्षा प्रदान कर सकती है।

सर्वांगीण साहस में चाहे कोई क्षेत्र हो, चाहे जो संकट हो, मनोवृत्ति एक ही रहती है स्थिर और आश्वस्त। जिस किसी में साहस है वह औरों को साहस दे सकता है, जैसे दीये की ज्योति दूसरे दीये को प्रज्ज्वलित कर सकती है। अपने दोषों को पहचानना श्रेष्ठतम साहस है।

प्रगति धीमी हो सकती है, पतन बार-बार हो सकते हैं, परंतु यदि साहस -पूर्ण संकल्प बनाए रखा जाए, तो यह निश्चित है कि हम एक दिन विजयी होंगे और यह देखेंगे कि सभी कठिनाइयाँ सत्य की जाज्वल्य-मान चेतना के सामने गल गईं या विलीन हो गई हैं।

शर्त यही है कि वह साहस सच्चा होना चाहिए, जैसा कि यह कहानी कहती है –

साहस

कहानी

बंदरों का सरदार अपने बच्चे के साथ किसी बड़े से पेड़ की डाली पर बैठा हुआ था| बच्चा बोला, “मुझे भूख लगी है, क्या आप मुझे खाने के लिए कुछ पत्तियाँ दे सकते हैं?”

बंदर मुस्कुराया, “मैं दे तो सकता हूँ, पर अच्छा होगा तुम खुद ही अपने लिए पत्तियाँ तोड़ लो.” “लेकिन मुझे अच्छी पत्तियों की पहचान नहीं है, बच्चा उदास होते हुए बोला|

तुम्हारे पास एक विकल्प है, बंदर बोला, “इस पेड़ को देखो, तुम चाहो तो नीचे की डालियों से पुरानी- कड़ी पत्तियाँ चुन सकते हो या ऊपर की पतली डालियों पर उगी ताज़ी-नरम पत्तियाँ तोड़कर खा सकते हो”|

बच्चा बोला, “ये ठीक नहीं है, भला ये अच्छी-अच्छी पत्तियाँ नीचे क्यों नहीं उग सकतीं, ताकि सभी लोग आसानी से उन्हें खा सकें”?

"यही तो बात है, अगर वे सब की पहुँच में होती तो उनकी उपलब्धता कहाँ हो पाती? उनके बढ़ने से पहले ही उन्हें तोड़ कर खा लिया जाता"!, बंदर ने समझाया|

लेकिन इन पतली डालियों पर चढ़ना खतरनाक हो सकता है, डाल टूट सकती है, मेरा पाँव फिसल सकता है, मैं नीचे गिर कर घायल हो सकता हूँ" बच्चे ने अपनी शंका जताई|

बंदर बोला, "सुनो बेटा एक बात हमेशा याद रखो, हम अपने दिमाग में खतरे की जो तस्वीर बनाते हैं, अक्सर खतरा उस से कहीं कम होता है"|

"पर अगर ऐसा है तो हर एक बंदर उन डालियों से ताज़ी पत्तियाँ तोड़कर क्यों नहीं खाता"? बच्चे ने पूछा|

बंदर कुछ सोचकर बोला-"क्योंकि, ज़्यादातर बंदरों को डरकर जीने की आदत पड़ चुकी होती है, वे सड़ी-गली पत्तियाँ खाकर उसकी शिकायत करना पसंद करते हैं पर कभी खतरा उठाकर उसे पाने की कोशिश नहीं करते जो वो सचमुच पाना चाहते हैं पर तुम ऐसा मत करना, ये जंगल तमाम संभावनाओं से भरा हुआ है, अपने डर को जीतो और ऐसी ज़िंदगी जियो जो तुम सचमुच जीना चाहते हो"।

बच्चा समझ चुका था कि उसे क्या करना है, उसने तुरंत ही अपने डर को पीछे छोड़ा और ताज़ी-नरम पत्तियों से अपनी भूख मिटाई।

साहसी, यह सभी खतरों का सामना करता है।

(श्रीमाँ द्वारा दिए गए पुष्प का आध्यात्मिक अर्थ तथा व्याख्या)

श्रीअरविंद का रचना कर्म - पद्य

डॉ.चरण सिंह केदारखंडी

(श्रीअरविंद की 150वीं जन्म जयंती पर श्री अरविंद आश्रम – दिल्ली शाखा ने 12, 13, एवं 14 अगस्त 2021 को त्रि-दिवसीय वेबिनार "संभावमी युगे यूगे" का आयोजन किया था। इस वेबिनर में 6 वक्ताओं ने अलग अलग विषयों पर अपने विचार रखे थे। इन वक्ताओं के वक्तव्यों को हम सिलसिलेवार पत्रिका में प्रकाशित कर रहे हैं। इसकी प्रथम कड़ी का प्रकाशन जनवरी-फरवरी 2022 के अंक में डॉ सुरेश चंद्र त्यागी का श्रीअरविंद का रचना कर्म, गद्य हो चुका है। इस अंक में है इसकी दूसरी कड़ी)

सर्वप्रथम मैं श्रीअरविंद एवं श्रीमाँ के चरणों में प्रणाम निवेदित करता हूँ कि श्रीअरविंद के 150वें जन्मदिवस पर, इस जन्मोत्सव पर एक बड़ा अवसर प्रारम्भ हो रहा है। इस मौके पर हमलोग, इस अंतर्राष्ट्रीय स्तर के अवसर पर, तृ-दिवसीय वेबिनर के बहाने यहाँ इकट्ठे हैं। मैं माँ भगवती से, श्रीअरविंद से इस कार्यक्रम को अपना आशीर्वाद प्रदान करने की प्रार्थना करता हूँ कि वे हमारी चेतना में रहें।

मैं श्री अरविंद हिन्दी क्षेत्रीय समिति के सभी पदाधिकारियों को, श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा की वर्तमान संचालिका भगवती माँ की यंत्र, तारा दीदी को, डॉ.अर्पणा रॉय को, श्री अरविंद सोसाइटी के यहाँ उपस्थित सभी वरिष्ठ लोगों को, जितने साधक हैं, आदरणीय त्यागी जी को भी नमन करता हूँ जिन्होंने एक तरह से मुझे आकृति-रूप दिया है। जब 2011 में मैं पहली बार पांडिचेरी गया तब मैंने जो कुछ भी लिखा था उसे मैंने एक तरफ रख दिया क्योंकि वहाँ मुझे यह देखने का मौका मिला कि वह एक दिव्य प्रयोगशाला थी। आश्रम को लेकर जो हमारी धारणायें थीं वे सारी वहाँ खंडित हो जाती हैं, उसको बहुत विस्तार मिलता है कि पूरा का पूरा जीवन कैसे योग हो सकता है। कविता कैसे जीवन और जीवन कैसे कविता हो सकती है, यह वहाँ देखने को मिला। और निजी तौर पर, चूंकि श्रीअरविंद स्वयं न केवल एक कवि हैं बल्कि वे कवि का निर्माण भी करते हैं। दिलीप कुमार रॉय ने अपनी पुस्तक "श्री अरविंद केम टु मी" (Shri Arvind Came to Me) में उन्हें केवल एक कवि ही नहीं बल्कि एक कवि निर्माता (पोएट मेकर) भी कहा है, और गुरु (द अलकेमिस्ट) भी कहा है। जिसके पास जाकर हमारी मूलभूत मामूली स्वरूप सोने का हो जाए, और हमारी मामूली कविता जिसके हाथों में जाकर बड़ी कविता हो जाए, उद्घाटन करने वाली कविता हो जाए, ऐसे कवि-निर्माता भी श्रीअरविंद थे।

उन्हीं में एक, अमल किरण उस समय तक ज़िंदा थे जब मैं 26 जून 2011 को उनसे मिला था, आश्रम नर्सिंगहोम में। कई वर्षों से मैं यह आरजू, यह अभीप्सा, यह प्रार्थना कर रहा था कि चूंकि अमल किरण अभी जिंदा हैं, 1927 से पांडिचेरी में हैं, मैं उनसे मिलना चाहता हूँ। उनके साथ का वह बड़ा भावुक पल था। उसके तीन दिन बाद उनकी मौत हुई। श्रीमाँ ने एक मौका दिया, मुझे बहुत बार लगा कि श्रीमाँ ने मेरे लिए ही उन्हें बचा रखा था, उनकी श्वासें रखी हुई थीं। यह एक बहुत सारा संस्मरण दिल्ली आश्रम की पत्रिका कर्मधारा में छपा और उसे पढ़ कर ही त्यागीजी ने मुझ से संपर्क किया और मेरे लिए बहुत सा साहित्य भेजा। नोएडा में मार्च 15-16, 2013 को शायद जो सम्मेलन 2013 में हुआ था उसके लिए भी उन्होंने ही मुझे प्रेरित किया था। आज चूंकि दिल्ली आश्रम के अलमस्त फकीर चाचाजी का भी जन्म दिन है। फकीर चाचाजी की समाधि पर सावित्री की पैंतालीस पृष्ठ पर निम्नलिखित दो पंक्तियाँ हैं -

He made great dreams a mould for coming things

And cast his deeds like bronze to front the years

इस तरह की जो उन्होंने साधना की, तपस्या की और कागज पर कविता न लिखकर कर्म की एक कविता लिखी। जौहर साहब का खुद का एक बहुत सुंदर संस्मरण है "My Mother (मेरी माँ)" जिनमें लगभग सौ किस्से श्रीमाँ, उनके परिवार, उनके जीवन और कैसे वे श्रीमाँ की ऑरा में आए, उससे संबन्धित हैं। उसी में एक जगह वे कहते हैं, "मैं श्री अरविंद का, किताबों की दृष्टि से श्रीअरविंद की सबसे पतली किताब मानी जाती है, अलग से छः निबंध प्रकाशित हुए थे "The Mother" के नाम से, वे जीवन भर मेरे सिरहाने रहे लेकिन मैं उनको भी पूरा नहीं पढ़ पाया। तो जौहर साहब का जीवन अपने आप में एक प्रमाण है, एक साक्ष्य है हम सब के लिए। वस्तुतः श्रीअरविंद को इस तरह बिना पढे भी कोई उनके कर्म को उनके योग को उनके जीवन को दिव्य धरती की उनकी प्रयोगशाला को जमीन पर उतार सकने में एक बहुत बड़ा बल, यंत्र हो सकता है। जो कविता की, कागज की कविता न लिखने वाले, कर्म की कविता लिखने वाले व्यक्ति, उनको भी नमन है, वंदन है, उनका भावपूर्ण स्मरण है।

साथियों "संभावमि युगे युगे" यह भगवान श्रीकृष्ण का एक बहुत बड़ा वादा है,

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ॥4.8॥

इसी वायदे की अनुगूँज सावित्री में भी श्रीअरविंद ने दी है, इस वादे को एक तरह से वापस दोहराया है। "O surely one day ....." और इन प्रसव वेदना के पलों में जब यह पूरी सृष्टि एक चौराहे पर है, धार्मिक रूप से, आध्यात्मिक रूप से, राजनीतिक रूप से, वैचारिक रूप से, अस्ततोगत सवालों से जूझ रही है तो यह हमारी वही वेदना का रूदन ही तो है। इस तरह के मंथन से, इस तरह के चिंतन से, इस तरह की साधना से हम जरूर श्रीअरविंद के नजदीक जाएँ और श्रीअरविंद की चेतना हम सबों के भीतर उतरे। "O surely one day ....."। एक दिन ऐसा आयेगा जब वे हमारे जीवन को नये सिरे से सृजित करेंगे। "And an utter formula of peace ....." और जब शांति का, सहृदयता का उस निश्छ्ल नीरवता का जिसका हम सबों को इंतजार है, अपने ध्यान से, अपनी कविताओं से, संगीत से, अपनी रूमानियत से, अपने अध्ययन से, चिंतन से, उस परम शांति का जो जादुई सूत्र है उसे जरूर प्रकट करेंगे। "And bring perfection to ....."। आज जो आड़ा तिरछा है, आज जैसा जो है वैसा करने में, चीजों को तराशने में, जरूर हमको पूर्णता की ओर ले जाएंगे। वायदा है प्रभु का, यह वायदा है श्रीअरविंद का।

श्रीअरविंद की कविता पढ़ना अच्छा है, श्रीअरविंद की कविता की विशाल ऑरा में जाना अच्छा है, लेकिन उससे लाख गुना अच्छा है जीवन को ही एक कविता बनाया जाए। अपनी किताब 'Essays and Divine' में श्रीअरविंद ने कहा "your life on the earth ....." धरती पर तुम्हारा जीवन एक दिव्य कविता है जिसे तुम मानवीय भाषा में अनूदित कर रहे हो, सांसारिक भाषा में अनूदित कर रहे हो। यह संगीत की एक ऐसी तान है जिसे तुम शब्दों का रूप देना चाह रहे हो। श्रीअरविंद को पढ़ना उनको जानना, उनका विमर्श करना, सब कुछ श्रीअरविंद के करीब जाने का बहाना है। इस संध्या का साँचा भी बहुत छोटा है, हमारा चिंतन, हमारा दर्शन, हमारा अध्ययन, और सबसे बड़ी चीज हमारी साधना बहुत कम है। हम अ-पात्र हैं लेकिन जैसे एक पिता, एक माँ अपने बच्चे के दोष को कबूल कर लेती है, स्वीकार कर लेती है, सुधारती है, पुचकारती है, यही तारीका श्रीअरविंद का रहा है और जो भी भूल-चूक इसमें होंगी, इस छोटे से विमर्श में, वे हमें जरूर उसी ईश्वरीय अनुकंपा से, ईश्वरीय स्नेह से, ईश्वरीय आनंद से नज़र अंदाज़ करेंगे।

साथियों आप खुद सोचिए कि क्या वजह है कि भारत में इतनी बढ़िया अँग्रेजी लिखने वाले, इतनी बढ़िया अँग्रेजी में काम करने वाले लोग थे और क्या वजह है कि अभी भी अँग्रेजी में इतना बढ़िया महाकाव्य कोई नहीं लिख पाया? हिन्दी में भी जिन लोगों ने महाकाव्य लिखा है उनकी संख्या आधे दर्जन लोगों से ज्यादा नहीं है। आखिरकार ऐसा क्या है महाकाव्य में? यह एक बड़ी प्रचंड साधना है और जिसके लिए हर कोई हिम्मत नहीं कर सकता। नॉवेल विजेता होने के

बाद, माँ भारती के एक बहुत बड़े साहित्यिक, सामाजिक हस्ताक्षर होने के बावजूद आप सब जानते है, ठाकुर रवीन्द्रनाथ टैगोर तक ने महाकाव्य का कोई प्रयास नहीं किया। उनकी सबसे प्रचलित किताब "गीतांजली" एक काव्यात्मक कविता है और ये वे रवीन्द्रनाथ हैं जो अपने से दस साल छोटे, यह उनके व्यक्तित्व की ऊंचाई है, कि वे उनको नमस्कार करते हैं, और एक उद्घाटन करते हैं, एक भविष्यवाणी करते हैं कि एक दिन भारत अपने आप को तुम्हारी वाणी से अभिव्यक्त करेगा। एक दिन अगर भारत को समझना होगा तो लोग श्रीअरविंद को समझेंगे। श्रीअरविंद को पढ़ पर लोग भारत को जानेंगे, भारत की ऑरा में प्रवेश करेंगे। जब हम श्रीअरविंद की कविता की बात कर रहे हैं तो हमें उनके दो अन्य आयामों को भी जरूर याद रखना चाहिए जो उसमें शामिल हैं। श्रीअरविंद सिर्फ कवि नहीं हैं, श्रीअरविंद एक ऋषि भी हैं, श्रीअरविंद एक योगी भी हैं। बहुत मुश्किल है श्रीअरविंद के कवि और ऋषि और योगी के रूप को अलग-अलग देखना। योगी कौन है? जहां तक मैंने पढ़ा है श्रीअरविंद ने "Letters of Yogi" में एक जगह लिखा है "योगी वह व्यक्ति है जो भगवान में प्रतिष्ठित हो गया है।" उसे अब निजी तौर पर और यात्रा करने की जरूरत नहीं, उसे और कहीं जाने की आवश्यकता नहीं, उसे अपने लिए पाने के लिए और कुछ करने की जरूरत नहीं है। जो रास्ते पर है वह साधक है, लेकिन जो प्रतिष्ठित हो गया वह योगी है। वह उसी समग्रता के साथ, वह उसी विस्तार के साथ उसकी व्याख्या भी करेगा और चीजों को देखेगा भी।

फिर कवि कौन है? हमारे देश में, दुनिया में कवियों ने तो इतना शोर कर रखा है कि गली-गली में कवि हैं। लेकिन श्रीअरविंद की दृष्टि से देखें तो वे लोग कवि नहीं हैं वे केवल कविता लिखने वाले हैं। अब एक कविता लिखने वाले में और कवि में अंतर क्या है? कवि हिन्दी का शब्द नहीं है, संस्कृत का शब्द है। श्रीअरविंद ने कवि की तीन पहचान बताई है जिसमें तीन यंत्र हों। सबसे पहले उसमें भावनात्मक सच्चाई हो। यानि, कवि जिस चीज की वकालत अपनी कविता में कर रहा हो निजी रूप से भी उसके प्रति उसकी हमदर्दी हो और निजी रूप से भी वह वैसा ही जीवन जीता हो और उसकी भावनात्मक स्तर पर उससे एकात्मता हो। उसके बाद दूसरा यंत्र - भाषा पर पूरा अधिकार और निपुणता हो, पूर्ण नियंत्रण हो। भाषा के जितने भी तुक, ताल, प्रकृति, स्वभाव, स्वरूप हैं, भाषा के जीतने भी उदात्त प्रकृति हैं, उन सब का ज्ञान हो। क्योंकि साहित्य तो एक तरह से भाषा का सर्वोच्च कक्ष है। भाषा तो खिचड़ी, बोलचाल, साधारण हर तरह की होती है, लेकिन साहित्य की भाषा आलीशान होती है, तेजस्वी होती है, उदात्त होती है। तीसरी बात जो बहुत जरूरी है जो किसी सामान्य लेखक को, कविता लिखने वाले को कवि बनती है या जिसके अभाव में वह एक कवि न होकर महज एक तुकांत कविता करने लगता है, टुक्कड़ बाजी करता है, वह है प्रेरणा का स्रोत, प्रेरणा की शक्ति। भागवत प्रेरणा का स्रोत। ये तीन अवयव मिल कर एक व्यक्ति को कवि बनाते हैं।

अब ऋषि कौन है? ऋषि को भी श्रीअरविंद ने "Letters on Yoga" में "Poetry, Art & Literature" में एक जगह लिखा 'ऋषि वह है जो सत्य का साक्षात्कार करता है। और उस सत्य की खोज करके, स्व-प्रभावी भाषा में संसार के सामने प्रस्तुत करता है, पेश करता है। ऋषि के बताने का जो माध्यम है, तरीक है, उसको कहा गया है "मंत्र"। ऋषि, कवि, योगी, कविताओं को मानसिक रूप से सोचता नहीं है वह कविताओं को देखता है, संस्कृत में "पश्यंती" बोला जाता है। इसलिए मानसिक ज्ञान का, मानसिक निपुणता का, मानसिक हुनर का होना तुकांत कवि के लिए तो बहुत मूल्य है लेकिन कोई भी व्यक्ति योगी, कवि, ऋषि मानसिक शक्ति के बल पर नहीं बन सकता। उसके लिए दूर दृष्टि, भगवत कृपा और प्रेरणा का होना आवश्यक है। दृष्टि एक अहम अंग, उपादान है। ईशाउपनिषद जिसमें केवल 18 श्लोक हैं, और श्रीअरविंद का प्रेम देखिए कविता को लेकर उन्होंने 650 पृष्ठों की एक टीका लिखी, 12 अलग-अलग पाण्डुलिपि लिखी इस ईशाउपनिषद के। और इसी में वे एक जगह लिखते हैं, कभी एक ऋषि ने दूसरे ऋषि को नहीं कहा कि आप क्या सोचते हैं? "आप क्या सोचते हैं?"- की कोई भाषा नहीं है। क्योंकि तर्क का वहाँ कोई काम नहीं है। "आप क्या जानते है?" ऋषियों का हर ज्ञान अनुभूतजन्य ज्ञान है। "आप जानते क्या हो?" जो कुछ भी ऋषियों ने कहा, श्रीअरविंद की ऊंचाई वाले कवियों ने कहा वह उनका अनुभव जन्य ज्ञान है। वह सोचा हुआ नहीं है। वह कविता याद करके, सोच करके,

मानसिक शक्ति से हासिल की हुई कविता कर्म नहीं है। वह देखा हुआ है, "पश्यंती" है। वह देखा हुआ अनुभव जन्य ज्ञान है। यह अंतर एक सामान्य तुकांत कवि में और एक कवि में है। योगी भी हैं श्रीअरविंद, ऋषि भी हैं श्रीअरविंद, और कवि भी हैं श्रीअरविंद। ऐसा विलक्षण संगम जहां होगा वहाँ एक-एक पंक्ति जो लिखी जाएगी वह "जीवन-परिवर्तन" की पंक्तियाँ होंगी, कविता होगी। साथियों यही वजह है कि भारत में महाकाव्यों को लिखने की परंपरा नहीं हो सकी है। क्योंकि इसके लिए केवल सामान्य बौद्धिक कौशल नहीं चाहिए, जैसा की कई बार बड़े-बड़े लेखक करते हैं कि पाँच सितारा होटल में रुकना है और फिर सर्वहारा पर कविता लिखनी है, गरीब पर कविता लिखनी है। उनके नीजी जीवन के आचरण की कोई तपस्या नहीं है। कोई आचरण की साधना नहीं है और फिर आप कोशिश करते हैं कि आप महाकाव्य लिखें यह संभव ही नहीं है। यही वजह है कि पिछले 75 वर्षों में कुछ भी नहीं लिखा गया बल्कि यह बहुत संभव है कि आगामी सैकड़ों वर्षों तक कोई दूसरा महाकाव्य अँग्रेजी में सावित्री के स्तर का आध्यात्मिक महाकाव्य, साहित्यिक रचना फिर भी संभव हो सकती है लेकिन अनुभव और तपस्या जिसमें डाली गई हो ऐसा आध्यात्मिक महाकाव्य लिखने के लिए तो उस ऊंचाई पर ही जाना पड़ेगा जिसकी कुछ चंद फुहारें सुनकर, कुछ चंद फुहारें महसूस करके, श्रीअरविंद ने महाराज अश्वपति के लिए लिखा "What now we see is a shadow of what must come" ज्ञान के अरुणोदय की ये चर्चा है। अभी जो दिख रहा है वह तो उसकी छाया मात्र है जो असल में आने वाला है। यही वजह है कि एक दौर में जो ऋषि नहीं था वह कवि भी नहीं था और कोई कवि ऐसा नहीं था जो ऋषि नहीं था। यही कारण है कि भारत की ज्ञान परम्परा का प्राचीन ग्रंथ कविता के रूप में है। उसमें रामायण शामिल है, महाभारत शामिल है, उसमें वेद शामिल हैं, उसमें उपनिषद शामिल हैं, उसमें आरण्यक शामिल हैं, उसमें सारा का सारा आलीशान तेजस्वी साहित्य शामिल है। ये कविता इसलिए है कि इसे कवियों और ऋषियों ने मिलकर, ऋषियों और कवियों की चेतना ने इसे देखा है। यह हमारी आर्ष मनीषा का सारा का सारा साहित्य कविता है, इसकी वजह यही है। और इसीलिए भी संस्कृत जरूरी है ताकि हम संस्कृत के द्वारा उस साहित्य की आत्मा में प्रवेश कर सकें।

समकालीन भारत की एक बहुत बड़ी समस्या है कि भारत के जनमानस की भाषा संस्कृत नहीं है। संस्कृत नहीं है तो फिर उस सनातन झरने से भी कोई प्रत्यक्ष ताल्लुक नहीं है। कश्मीर की धरती पर सोमदेव ने जो कथा-सरितसागर लिखा वह उन बहुत सारे चंद ग्रन्थों में से एक है। भारतीय आर्ष मनीषा के ग्रंथ हैं और हमको वहाँ तक जाना चाहिए। सी.आर.दास ने तीन विशेषण श्रीअरविंद के लिए चुने, उन तीन विशेषणों में श्रीअरविंद का सारा जीवन और संदेश समाहित हो जाता है। सी.आर.दास ने उस खचाखच भरी सभा में क्या कहा? "Long after he is dead and gone he will be looked upon in India as (पहला विशेषण है) poet of patriotism, (फिर है) prophet of nationalism, (और तीसरी बात है) lover of humanity। यही तीन उपदान, ये तीन श्रेष्ठ वरदान श्रीअरविंद ने भारत की भूमि को दिया। "as poet of patriotism" उन्होंने क्या देखा? जब वे भारत में आए तो उनके आस-पास चारों तरफ एक प्रकार की निरर्थकता, फालतूपन सा छाया हुआ था। धुन्ध सा छाया हुआ था। कहीं कोई बेचैनी नहीं थी, कोई उथल-पुथल नहीं थी। 1912 आते-आते तक भी गोखले जैसे काँग्रेस के बड़े नेता हुए, जिनकी भाषा यह थी, यह दस्तावेजों में सुरक्षित लिखा पड़ा है, "पूर्ण स्वराज की बात तो कोई सिरफिरा ही करेगा"। और श्रीअरविंद 1907 में पूर्ण स्वराज की बात कर चुके थे। "as poet of patriotism" श्रीअरविंद का पहला काम क्या है? उन्होंने बीसवीं सदी के पहले दशक में जो लिखा वह पूरी की पूरी कविता, वह पूरा का पूरा साहित्य शक्ति की साधना का साहित्य है। उन्होंने महसूस किया भारत की जो गुलामी है, भारत का जो पतन है, भारत का जो बिखराव है, खुद बंगाली जाति को भी, कायर और कमजोर माना जाता था। और एक तरफ दिख रहा था वह विशाल आलीशान राज जिसका दुनिया में लगभग 60 मुल्कों में, उस दौर में उसका राज चलता था। भारतीय जनमानस तो बहुत मायूस, बहुत निराश, बहुत उदास हो गया था। वह बिखरा हुआ भी था। जो भी राजनीतिक दल था वह हाथ जोड़ता था, प्रार्थना और दरख्वास्त देने की बात करता था, इसीलिए "New lamps for old" में उन्होंने इतना निर्मम प्रहार भारतीय राष्ट्रीय काँग्रेस पर किया कि एक अंधा-अंधे को कंधे पर लादकर कहाँ तक ले जाएगा, वे दोनों खड्ड में गिरेंगे यह तय है। पाठकों यह तय है, चाहे वो "दुर्गास्तोत्र" हो

चाहे "भवानी मंदिर" हो जिसे आज भी पढ़कर रोंगटे खड़े होते हैं। भवानी मंदिर के द्वारा इशारा किया श्रीअरविंद ने, पहले उन्होंने बताया कि राष्ट्र क्या है?

हम उन सब के सबसे करीब होते हैं भावनात्मक रूप से माँ के, इतना खूबसूरत हिमालय हमारे पास है, इतनी खूबसूरत गंगा, यमुना, गोदावरी, ब्रह्मपुत्र, नर्मदा नदियां है, गंगा का इतना विशाल मैदान है, लेकिन इनसे अपनी पहचान न करते हुए उन्होंने कहा कि राष्ट्र, शक्ति का साक्षात स्वरूप है। दूसरी चीज जो उन्होंने बताई वह है यह तुम्हारा राष्ट्र क्यों है? भवानी मंदिर में ही इसका जवाब है - दुनिया को म्लेच्छों से दूर करने के लिए और पुनः सारी मानव जाति को आर्यन बनाने के लिए ही भारत का उदय हुआ है। इसीलिए भारत नष्ट नहीं हो सकता। हमारी जाति का विलोपन नहीं हो सकता। क्योंकि मानव जाति में जितने भी खंड मानव के लिए, इन्सानों के लिए हैं उसमें सबसे उदात्त, सबसे आलीशान, सबसे तेजस्वी भाग्य भारत के लिए रखा गया है। और वह भाग्य क्या है? एक तो सनातन धर्म विश्व का सबसे विराट, समन्वयवादी धर्म सब धर्मों को अपने अंदर लेकर सनातन धर्म को विश्व के सामने प्रस्तुत करेगा, एक आत्मा के रूप में। और दूसरा है मानवता में जो बर्बरता है, जो म्लेच्छवाद है उस पाप को मानव जाति से हटा कर शुद्ध करना। श्रीअरविंद ने 'शुद्ध / पवित्र करना' शब्द का प्रयोग किया है। म्लेच्छवाद क्या है? जहां-जहां भी गंदगी है, जहां-जहां भी आतंकवाद है, जहां-जहां भी असुरत्व है, जहां-जहां भी अज्ञान के प्रति जरूरत से ज्यादा मोह है, जहां-जहां भी अहंकार है, दुनिया के किसी भी देश में जहां सत्य की साधना नहीं है, जहां विश्व को मित्र देखने वाली दृष्टि नहीं है, जहां किसी दूसरे के विचार और धर्म के लिए जगह नहीं है, उन हर जगह में म्लेच्छत्व है। भारत ही वह देश है, वह खंड है, वह आर्य भूमि है जो आर्य जाति को इस तरह के म्लेच्छत्व से पवित्र करे और फिर से सारी मानव जाति को आर्यत्व प्रदान करे। तो आर्यत्व के रंग में रंगना, आपने महाभारत, रामायण सब में देखा है, एक भी मौका ऐसा नहीं है, एक भी उदाहरण ऐसा नहीं है जहां एक राजा दूसरे राजा को या एक रानी अपने सम्राट को महाराज या महान सम्राट कहती हो, सम्बोधन है 'आर्यपुत्र'। आर्यत्व, श्रेष्ठत्व यह है आर्य भूमि।

उसी दस्तावेज़ में श्रीअरविंद ने ये भी लिखा, यह महसूस करते हुए कि कहीं हम यह न मान लें की ये बाहरी लोग हैं हमें मार देंगे, हम तो बहुत अच्छे लोग हैं लेकिन ये हमें समाप्त कर देंगे। उन्होंने यह भी लिखा कि कोई भी देश, कोई भी जाति कमजोर नहीं हो सकती जब तक वह खुद को कमजोर न समझे, और कोई भी मुल्क नष्ट नहीं हो सकता जब तक वह अपनी इच्छा से मृत्यु का वरण न करे, मृत्यु स्वीकार न करे। ये सब क्या था, ये सब वो दायित्व था जिस कारण सी.आर.दास ने उन्हें कहा "Poet of Patriotism", इसने आग लगा दी थी, बारूद बना दिया था नौजवानों को। मैंने डॉ.करन सिंह की किताब "Prophet of Indian Nationalism" की भूमिका पढ़ी है, भूमिका जवाहर लाल नेहरू ने लिखी है और उन्होंने कहा है वन्देमातरम की हर किस्त का नौजवानों को इंतजार रहता था। सुभाष चंद्र बोस को हर किस्त का इंतजार रहता था। बीसवीं सदी के पहले दशक में सबसे पहले राजनीतिक हीरो अगर कोई थे तो वह थे श्रीअरविंद। उसी बीच धर्म पत्रिका में पहली बार "दुर्गास्तोत्र" में उन्होंने लिखा और उसमें एक नई दृष्टि दी, उसमें भी एक बार फिर लिखा कि राष्ट्र को गुलाम बनाने वाले जो कारण हैं वे हैं हमारा स्वार्थ, हमारा भय, हमारी क्षुद्राशयता। और हम में जो हमारी मौलिकता थी, ज्ञान था, शिक्षा थी, सच्चरित्रता थी, मेघा शक्ति थी, श्रद्धा भक्ति थी वह लुप्त हो गई है। इनका लोप होना और स्वार्थ भावना और भय का आगे आना, इनका प्रभावी हो जाना भारत की गुलामी का कारण था। तो आवाहन किया श्री अरविंद ने काली रोपणी, निर्मल्य मालनी, दिगंबरी, कृपाण पाणवेदी, असुर विनाशिनी अपने क्रूर निनाद से अंत: शत्रुओं का विनाश कर। अब यहाँ यह महत्वपूर्ण है कि "अन्तः शत्रुओं का विनाश कर" इनमें से एक भी हमारे अंदर जीवित न रहे। जब तक हम भारतीय स्वार्थी रहेंगे, खुदगर्ज रहेंगे, डरे हुए रहेंगे, उदार नहीं होंगे, क्षुद्राशयता में जिएंगे तब तक अगर बाहरी आजादी मिल भी गई, राजनीतिक आजादी मिल भी गई तो हम उस आजादी का क्या करेंगे? हम उसे संभाल ही नहीं पाएंगे। तो यह अन्तःदृष्टि श्रीअरविंद ने दी। और कैसा भारत चाहा – बलशाली, पराक्रमी, उन्नत चेता-जागी, भारत के पवित्र काननों में, उर्वर खेतों में, गगन सहचर पर्वतों के तले, ऊत थाला नदियों के तीर पर,

एकता से, सत शक्ति से, शिल्प से, साहित्य से, विक्रम से, ज्ञान से श्रेष्ठ हो कर निवास करे। मातृ चरणों में यही प्रार्थना है। ये आरजू है , ये अभिप्सा है।

हमारा सबसे बड़ा नुकसान हमारे अंदर जो विद्वेष की भावना रही, हमारे अंदर जिस एकता की भावना का अभाव रहा, भारत अगर एक-एक हजार साल तक गुलाम रहा उसका सबसे बड़ा कारण यही रहा कि जहाँ सिकंदर के सामने पुरू खड़ा था वहीं उसके बगल में एक दूसरा भारतीय, आम्भी, खड़ा उसकी मदद कर रहा था। ऐसा कोई षड़यंत्र नहीं है, ऐसी कोई साजिश नहीं है, भारतीय इतिहास की ऐसी कोई लड़ाई नहीं है जिसमें हम भारतीयों ने अपने ही भाई के विरुद्ध संग्राम में हिस्सा नहीं लिया। आपको यह सुनकर ताज्जुब होगा कि जब झाँसी की रानी को मारा गया, तब तीन-चार दिन बाद ग्वालियर घराने में बाकायदा इसके लिए पार्टी हुई। उस विजय का जश्न मनाया गया। ये भारत की तस्वीर है, ये भारत के पराजय के कारण रहे हैं जिसे श्रीअरविंद ने बड़ी गहराई से देखा।

भारतीय नौजवानों में जो पद-दलित था, जिसका आत्मसम्मान बहुत गिर चुका था, जिसका आत्मा विश्वास बहुत कम था, उसके लिए श्रीअरविंद ने क्या कहा, "यह केवल भारतीय ही है जो सब का विश्वास करता है, उसमें हिम्मत है, जो सब कुछ न्यौछावर कर देता है। (it is only the Indian who will believe everything, dare everything, sacrifice everything)". जब यह वाणी गूंजी, जब यह चेतना में गया, तब वह पद-दलित नौजवान जो गली में अंग्रेजों से पिट रहा था, जिसका अपना कोई स्वाभिमान नहीं था, उसके भीतर ओज और बल का संचार हुआ। भारतीय का वह क्या विश्वास था – वह 60 मुल्कों पर काबिज जो अंग्रेज़ हैं यह आखिरी सत्ता नहीं है। उसके ऊपर भी एक सत्ता है और यह अँग्रेजी सत्ता भी धूल-धूसरित हो सकती है। और जब श्रीअरविंद कह रहे थे "वह जबर्दस्त साहसी है, उसे उखाड़ फेंको", एक इशारा था भीतर-ही-भीतर कि उसे उखाड़ फेंको। इसे उखाड़ फेंकने की हिम्मत करो। यह नौजवान हर तरह का त्याग कर सकता है। हमारे निजी जीवन की, हमारे राष्ट्र के सामने कीमत ही क्या है? राष्ट्र के सामने हम हैं ही क्या? हमारे पास है क्या इतना कि हमारे जान की बहुत कीमत है। अगर माँ भारती की छाती पर सवार हो कर कोई म्लेच्छ, कोई परदेशी उसका लहू पी रहा है तो नौजवान क्या करेगा? "सर्वस्व न्यौछावर करो", एक इशारा किया उन्होंने "recover the patrimony of your fore fathers", शब्द महत्वपूर्ण हैं, "recover" का प्रयोग किया उन्होंने। किसी भी वस्तु को हम फिर से हासिल कर सकते हैं लेकिन नष्ट हुई चीज को हम फिर से हासिल नहीं कर सकते हैं। अपने पुरखों की विरासत को फिर से हासिल करो। और वह विरासत क्या है, "आर्य विचार, आर्य अनुशासन, आर्य जीवन, आर्य चरित्र" को फिर से हासिल करो। ये तेजस्वी संकेत हैं उसके अंदर, और उन्हें केवल बुद्धि और ज्ञान में नहीं बल्कि जीवन में हासिल करो। वेदान्त, गीता और योग को जीवन में अपनाओ, कठिन और असंभव शब्द तुम्हारे शब्दकोश से गायब हो जाएंगे। आज जिस भारतीय जाति को, आज जिस बंगाली जाति को कायर कहा जाता है, कमजोर कहा जाता है, उनमें मृत्यु और नष्ट होने का भय नहीं रहेगा। यह जो वाणी गूंजी श्रीअरविंद की, जब श्रीअरविंद ये लिख रहे थे तब उनका कवित्व देश-प्रेम का ऋण चुका रहा था। "प्रोफेट ऑफ नेशनलिज़्म" का खर्च भी इसी में हो गया, इसी में उन्होंने पूरा कर दिया। उसी दौर में उन्होंने एक छंद-बद्ध कविता संस्कृत में लिखी। एक व्यक्ति जिसके पिता यह कह कर गए थे कि मैं किसी भी हाल में इसे भारतीयों की छाया से दूर रखना चाहता हूँ, खबरदार भारतीय संस्कृति और भारतीय की कोई छाप मेरे इस बच्चे पर नहीं पड़नी चाहिए। वह व्यक्ति भारत आता है, बंगाली सीखता है, गुजराती सीखता है, संस्कृत सीखता है और न केवल सीखता है बल्कि संस्कृत में छंद-बद्ध कविता लिखता है, तेजस्वी छंद-बद्ध कविता लिखने का सामर्थ्य रखता है। इस कविता में एक किस्सा कहने वाला है, उनका संदेश पूरा-का-पूरा बीसवीं सदी के पहले दशक में साफ है, सत्य का संदेश है।

"भवानी भारती" में भी एक मौज-मस्ती में डूबा हुआ कथा वाचक है जिसको कोई मतलब नहीं है कि उसके भाई-बहनों का लहू राक्षस पी रहे थे और वह राक्षस था वह औपनिवेशक सत्ता धारी, उनको भुला कर अपने राग-रंग में,

व्यसन में वह डूबा हुआ है। उसको उसकी दरिद्रता से, उनकी बुरी दशा से कोई मतलब नहीं है। उसी समय प्रकट होती है काली और उसके वक्ष-स्थल पर एक प्रहार करती है, और कहती है, "ये जो तुम दीन-दरिद्र, जघन्य खंड लोगों का सहारा लेकर आलिंगन कर रहे हो और तुम जो अपने भोग विलास में, अपने आलस में, अपने प्रमाद में अपनी वनिताओं का, सुंदरियों का आलिंगन कर रहे हो, का पुरुष! – नामर्द तुम लोगों को पता नहीं है कि इनके रूप में तुम मृत्यु का ही आलिंगन कर रहे हो।" इस तरह की दृष्टि, इस तरह का विचार, यह पूरा का पूरा पहले और दूसरे दशक में खास तरह से पहले दशक में श्रीअरविंद दे रहे थे। और इसके बाद जब एक भूमि तैयार हुई, उसके बाद उनका अलीपुर जेल में रहना हुआ, वहाँ जो भागवत साक्षात्कार हुआ, उग्र राष्ट्रवाद को आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की ऊर्जा और ऑरा दे दिया। फिर वे लिखते हैं, अलीपुर जेल में लिखी हुई कविता "Invitation" (आमंत्रण)। इस कविता के पहले बड़ौदा में 1898 के लगभग 22 कविता "Songs of Mrytilla" के नाम से छपी थी। ये कवितायें ज़्यादातर कुछ आयरिश राष्ट्रवाद से प्रभावित थीं, कुछ उन पर जो रूमानी प्रभाव था उस पर थीं। लगभग 8 कवितायें माइकेल मधुसूदन पर थीं, अपने श्री बंकिम चंद्र चटर्जी, अपने नाना ऋषि नारायण बोस ऐसे 8 महापुरुषों पर उन्होंने व्यक्तिगत कविता लिखी। लेकिन श्रीअरविंद का दूसरा कालखंड इसके बाद शुरू होता है, Invitation से। एक तरह से 1908-10 से यह कालखंड शुरू होता है। ज्यादातर मौकों पर, साफ मौसम होने पर, अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर लोग सफर के लिए निकलते हैं। लेकिन श्रीअरविंद अपने आध्यात्मिक आरोहण के लिए जो कार्य कर रहे हैं वह ऐसे मौसम में कर रहे हैं जब आसपास में तूफानी हवाएँ चल रही थीं। "With the winds and weather beating around me, upto the hill where I go who will come with me, who will climb with me …… with the winds and the snow"? जब आसपास ऐसी तेज तूफानी हवाएँ चल रही हैं, ऊंचे हिमालय के शिखर पर मैं जाता हूँ, मेरे साथ कौन आयेगा, मेरे साथ कौन आरोहण करेगा, कौन जल धाराओं को पैदल पर करेगा, कौन भारी कदमों से बर्फ पर चलेगा? और इस कविता की अंतिम छंद एक दृष्टि से होता है जिसमें फिर से हमें भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की झलक मिलती है।

"I am the lord of tempest in the mountain, I am the spirit of freedom and cry……. who shares my kingdom and walks my…… " जो मेरे पास आयेगा जो मेरे राज में रहेगा, उसे बहुत निर्मल-विमल होना चाहिए, उसके जीवन में कोई दुराव छिपाव नहीं होना चाहिए। उसे तेज होना चाहिए, उसे ईमानदार होना चाहिए और उसे खतरों का आता-पता होना चाहिए। He must be ….. to danger. यह एक प्रकार का आवाहन था, एक आस्था थी, एक आश्वासन था, यह एक साहसी आवाहन था। मेरा जो आरोहण आने वाला चालीस वर्षों में, मेरी तपस्या-साधना प्रारम्भ होने वाली है, वह कोई सामान्य साधना–तपस्या नहीं है, वह मानवता के इतिहास में, जिस तरह रात-दिन में उन्होंने सावित्री शुरू की, माता जी से कहा "I have launched myself on a rudderless boat in the wasteness of infinity"। "मैंने खुद को एक पतवार विहीन नौका में असीम सागर में उतार दिया है, अब मैं नहीं जानता कि मैं कहाँ तक पहुंचूंगा"। ये श्रीअरविंद के उद्गार हैं, उनकी स्वीकारोक्ति है माताजी के साथ। कितना विशाल, कितना आलीशान सावित्री का फ़लक है लेकिन उससे पहले कि यह तैयारी है। उसके पहले लंबी-लंबी कविताओं के माध्यम से सावित्री को जन्म दे रहे हैं। सावित्री में जाना चाहते हैं, उस चेतना को लाना चाहते हैं। उससे पहले बहुत-बहुत खूबसूरत पड़ाव में, खूबसूरत मार्मिक गीतों का, छंदों का पड़ाव है। उनकी बहुत अच्छी छोटी कविताओं का पड़ाव है। "देवता का श्रम" जैसी कविता का पड़ाव है, "WHO" जैसी मार्मिक कविता का पड़ाव है, जिसकी चार मार्मिक पंक्तियाँ हैं जिसे पढ़ने से मैं अपने आपको रोक नहीं सकता। इसे उन्होंने उसी दौरान लिखी, जिसकी प्रतिध्वनि हमें फिर से सावित्री में मिलती है।

देवता के श्रम में कहीं न कहीं सावित्री की अनुगूँज है। कैसे, क्या है देवता का श्रम, He who brings the heaven here must descend himself in …… and the burden of earthly nature beard and trade the dollar of sway ……. . श्रीअरविंद का अवतार कोई बहुत बड़ा अलौकिक अवतार नहीं है जो

मनुष्यों से बहुत ऊपर है, जिसके लिए कुछ भी करना बहुत आसान नहीं है, न उसके कई सिर हैं न उसके कई हाथ हैं। ऐसा नहीं है श्रीअरविंद का अवतार, हमीं में से एक है, इन्सानों के बीच ही पैदा हुआ अवतार है। उसे खुद को एक मिट्टी बनना पड़ेगा, इस शब्द का कुछ भी अर्थ लिया जा सकता है। उसे अपने आप को पूर्णतया अहंकार रहित बनाना पड़ेगा। उसे अपने को बहुत सहज-सरल बनाना पड़ेगा, उसे मानवता के सब दुख-दर्द से पहले खुद को जूझना पड़ेगा, ये देवता का श्रम है। ये धरती पर श्रीअरविंद का श्रम है। वह जो मानवता का उद्धार करेगा, वह जो स्वर्ग यहाँ लाएगा, क्योंकि धरती तैयार नहीं है, धरती सहयोगी नहीं है, असत्य का यहाँ बहुत बोल-बाला है, यहाँ लोग न केवल अज्ञानी हैं, बल्कि सावित्री में वे कहते हैं कि अज्ञान से लोग प्रेम करते हैं। और यही वजह है कि जैसे ही कोई ईसा, जैसे ही कोई मूसा, मर्मज्ञ, मंसूर, थॉमस मूर, क्राइस्ट जैसे ही कोई इशारा करता है उस अज्ञान की तरफ, अज्ञान को मिटाने के बदले वे उस साथी को, उस दूत को ही मिटा देते हैं। यह धरती के लोगों का तरीका रहा है। जो इस दुनिया को बोध का मुकुट पहनाता है उसी को वे सूली पर लटका देते हैं। ऐसा क्यों है, क्योंकि "This world is in love with its own ignorance, यह दुनिया अपनी अज्ञानता से प्यार करती है।" सावित्री की तैयारी देवता के श्रम से भी शुरू हो रही है। और जो बात देवता के श्रम में कही है वही बात बार-बार सावित्री में भी कह रहे हैं। पृष्ठ संख्या 537 में श्रीअरविंद कहते हैं "The day-bringer must walk in the darkest night जो इस धरती पर बोध का, आनंद का, सौंदर्य का उजाला लाएगा उसे खुद को सबसे पहले घनेरी रात से गुजरना होगा"। उसकी वजह क्या है, "He who saved the earth must share its pain, जो धरा को बचाएगा उसे धरती के दर्दों का साझीदार बनना पड़ेगा। उसे स्वयं को अनुभव करना पड़ेगा। If knows not the grief अगर उसे दर्द की स्वयं को अनुभूती नहीं है तो वह दुःख-दर्द का इलाज कैसे कर पाएगा?" वह रोती, बिलखती, कराहती मानवता का, आत्मा का इलाज कैसी कर पाएगा। कहाँ जरूरत है शुद्धि की, इलाज की उसे वह कैसे जान पाएगा? इसीलिए श्रीअरविंद अवतार लिए हैं जो हमारे बीच से ही एक हैं जो "God must be borne on the earth and be as a man, that man being a human may grow up as a God, ईश्वर आए धरती पर बिलकुल इंसान की शक्ल लेकर आए ताकि इंसान को यह ज्ञान हो जाए, यकीन हो जाए कि उसके भीतर भी ईश्वर की सत्ता जन्म ले सकती है" और श्रीअरविंद की साधन में, काव्य में, योग में, यह आपसी ऋण है, वे कहते हैं एक जगह कि जैसे ईश्वर ने अपने को धरती पर उतारा अब यह धरती की बारी है कि वह अब अपने भीतर की भगवत्ता को उद्घाटित करे, प्रकट करे, उन्नत करे। जब तक यह कर्ज पूरा नहीं होगा तब तक यह सृजन चलता रहेगा, यह अधूरापन खलता रहेगा, और तब तक श्रीअरविंद की साधना, योग और संदेश फलीभूत नहीं होंगे।

इसके अलावा Bride of Fire शीर्षक से एक बहुत सुंदर कविता लिखते हैं जिसमें वे बोलते हैं कि मैं अब शोक और दुःख से ऊपर हो गया हूँ, तुम्हारे आनंद को झेल सकता हूँ, आप मेरी चेतना में उतरो। Who में वे कहते हैं कि --

"All music is only the sound of His laughter,

All beauty the smile of His passionate bliss,

Our lives are His heart-beats,

Our rapture the bridal of Radha and Krishn.

Our love is their kiss,

ये सारा संगीत इस धरती पर भगवान की हंसी की आवाज है

उसका जो उत्कट आनंद है वह सारा-का-सारा उसके सौंदर्य का है।

ये जो हमारी धड़कनें धड़क रही हैं यह दरअसल भगवान के हृदय की धड़कनें हैं।

और हम जो भी हँसते हैं, जो भी आनंद लेते हैं, आनंद की फुहारों में जीते हैं, वह राधा और कृष्ण की हंसी है।

हम जब भी प्रेम की सौगात बांटते हैं, जब हम प्रेममय होकर वास्तव में प्रेम को जीते हैं वह वास्तव में राधा और कृष्ण का चुंबन है"

ये Who की पंक्तियाँ हैं। यही पंक्तियाँ फिर सावित्री में जाकर 624 पृष्ठ पर "प्रेम और मृत्यु के बीच विवाद Debate between love and Death" जो की बहुत ही रोमांचकारी विचार-विमर्श है, अपने आप को समझने के लिए, दुनिया को समझने के लिए, तर्क को समझने के लिए, कुतर्क को समझने के लिए उसमें फिर इसकी अनुगूँज सुनाई देती है। "His laughter of beauty breaks out in green trees. भगवान अगर हँसते होंगे तो इन हरे पेड़ों को देखते हुए महसूस करें की भगवान कैसे हँसते होंगे। His moments of beauty ….. in flowers, वह जब सृजन करता होगा तब उसके सृजन के पल फूल के रूप में सबसे उदात्त रूप में सामने आते हैं। दूसरे अर्थों में भगवान कितना श्रेष्ठ रच सकता है, यह फूलों को देख कर महसूस करना चाहिए। The blue seas chant …… are the murmurs of eternal falling from his heart नीले सागर का जो यह गान है, जो ये छोटी नदियों की धाराओं की कलकल है, ये कुछ और नहीं है शाश्वत की वीणा से निकली हुई तान, आवाज, सुर और उसका संगीत है"।

उसके बाद, उसी दौरान श्रीअरविंद ने God के शीर्षक से एक छोटी सी कविता लिखी। क्या है वह कविता, उसका एक भाग है

"Thou who disdainest not the worm to be, Nor even the clod,

Therefore we know by that humility, That thou art God

क्योंकि तुम एक महीन कीड़े से भी नफरत नहीं करते हो, उसके होने से भी तुम्हें कोई आपत्ति नहीं है, उसको भी सहेजते हो, पुचकारते हो, और तुम्हें एक मामूली मिट्टी के ढेले से भी बड़ा प्यार है, इसी नम्रता से हम जानते हैं की तुम God, ईश्वर हो"।

मुझे ध्यान आता है Thoughts of Nepohorism की एक पंक्ति ईश्वर की नजरों में कुछ भी छोटा नहीं है, तुम्हारी नजरों में भी कुछ भी छोटा नहीं होना चाहिए – श्रीअरविंद उसमें यही सुझाव देते हैं। इसी प्रकार उनके जो Sonnets हैं, गीत हैं, Transformation है, Christ of Identity है, Pilgrims of Night महानिशा का तीर्थ यात्री, liberation है, Songs of Goddess है, नर्मदा के किनारे एक मंदिर में उनको एक महा भगवती के दर्शन हुए थे, कश्मीर की यात्रा में उनको एक देवी के दर्शन हुए थे और शंकराचार्य की एक पहाड़ी पर उनका एक गीत है, कृष्ण पर उनका एक गीत है, शिव पर एक गीत है, Devine Worker एक गीत है, और Endless Light के नाम से भी श्रीअरविंद का एक गीत है।

उन्होंने दोनों तरह के गीत लिखे, अँग्रेजी में दो तरह के गीतों की परंपरा है, जिस में एक मिल्टोनिक सोनेट और

दूसरा शेक्सपीरियन गीत होता है। श्रीअरविंद तो शेक्सपीयर के बहुत ही मुरीद थे, उन्होंने कवियों की तीन श्रेणीयां की हैं जिसमें शेक्सपीयर को सबसे ऊपर रखा हुआ है। शेक्सपीयर, होमर, वाल्मीकि एक तरफ सबसे ऊपर हैं, कालिदास दूसरी पंक्ति में हैं, यह कवियों का विभाजन श्रीअरविंद का है। उनकी जो ये यात्रा गुजरती है, छोटी कविताओं से God से, Gods Labour से, Who से, इसके अलावा Cosmic Man है, इसके अलावा श्रीअरविंद ने बहुत लंबी-लंबी कवितायें लिखी है। एक और महाकाव्य है उसका भी पहला शब्द dawn है, सावित्री का आखिरी शब्द भी dawn है, Ahana है, जिसमें उषा की देवी धरती पर उतर रही है, इसी कड़ी में वह चाहे चित्रांगदा हो, उलूपी हो, Love and death हो, उर्वशी, ऋषि में मनु का उर्वशी के साथ संवाद है, Tale of Nal and Damyanti चार अनुच्छेदों का छोटा सा है, ये सब जब श्रीअरविंद लिख रहे थे अलग-अलग समय में यह कहीं न कहीं सावित्री की तैयारी चल रही थी।

मैंने भी एक पुस्तक लिखी है, यह श्री अरविंद प्रेस से ही आई है, श्रीमाँ के प्रेस से, इसमें श्रीअरविंद को 2-3 कवितायें समर्पित हैं, मैं इनमें से एक कविता का पाठ कर समाप्त करूंगा:

जगत की धड़कनों पर देवता का श्रम
यहीं इसी विभाजित मानवता में,
गढ़ो : "मानव एकता का आदर्श",
लड़ो : 'मानव चक्र' के सहारे
समय के हर दुष्चक्र से...
दिशाहीन दिशा में, इस अघोरी निशा में
'कल की कविता'
बनकर सामर्थ्य की सविता
पढ़ाएगी तुमको ' वेद का रहस्य'
और "योग की पातियों" का वियोग...

मै निकट हूँ लाड़लों...
बनकर देवता का श्रम
तोड़ रहा हूँ असत्य का भ्रम...

मेरे एहसास की तलाश रखना...
सागर के उस पार तकना...
अतिमानस की प्यास रखना...
वह सृष्टा है, द्रष्टा है,
पार्थ है, पथ है, पाथेय है....
चेतना शिखरों पर विराजित
बोध की तरंगों से प्रवाहित

आनंद सरोजों से सुवासित
उसकी स्वर्णकाया में धड़कती है,
फड़कती है युग की संवेदना...

समदृष्टि और साखी हो निहारता,
रुग्ण मानवता को पुचकारता
बनकर साक्षात् करुणा दुलारता—
आओ, लौट आओ लाड़लो !
थामकर हाथ मेरा,
अमरत्व का द्वार खटखटाओ...

मत लुटाओ अपना श्रम सौरभ,
तिमिर में, तमस में, भूख में, वासना में
झूठे जौहरियों के पास...

अवसाद और उदासी के सहोदरो!
भय और विपदा के वंशजों !
लौट आओ.. लौट आओ... लौट आओ देखो...
जीवन दीप की फड़फड़ाती लौ में,
तेल सिमट जाने को है,
वह थरथराती काल काया,
निकट आने को है.....

आश्रम गतिविधियाँ

18 मार्च होली के रंगीन त्योहार पर आश्रम के युवकों को त्योहार के प्रतीकार्थ से परिचित कराते हुए विशेष दिनचर्या के साथ (जो श्रमदान से आरंभ की गई) जीवन के उच्च मूल्यों से अवगत कराने का प्रयास किया गया।

स्वरांजलि- करुणा दीदी के जन्म के उपलक्ष में संध्या-समय आश्रम-ध्यान-कक्ष में तीन दिवसीय संगीत समारोह स्वरांजलि का आयोजन किया गया जिसमें 24 मार्च को डॉक्टर सुभद्रा देसाई जी ने श्री अरविंद एवं श्री मां को समर्पित शास्त्रीय गायन प्रस्तुत किया, उनके साथ श्री शंभूनाथ भट्टाचार्य ने तबला वादन तथा श्री चेतन निगम जी ने हारमोनियम पर संगत की।

25 मार्च 2022 को डॉक्टर रंजन कुमार द्वारा वायलिन वादन तथा पंडित दुर्जय भौमिक के द्वारा तबला वादन द्वारा प्रस्तुत किया। गया।

26 मार्च 2022 को पंडित सुरेंद्र राहुल के सितार वादन के साथ पंडित आशीष सेन गुप्ता ने तबला वादन प्रस्तुत किया।

29 मार्च- श्री अरविंद आश्रम में यह विशेष दिवस माना जाता है। यही दिवस था जब हमारी भगवती मां के चरणों ने प्रथम बार पांडिचेरी की धरती को स्पर्श किया था।

श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा में इस दिन का प्रारंभ प्रातः 7:00 बजे ध्यान कक्ष में माँ भगवती के आह्वान द्वारा किया गया, संध्या समय ध्यान-कक्ष में भक्ति-संगीत के साथ समाधि-प्रांगण में अभीप्सा के दीप जलाए गए। सभी ने इस पावन दिन की स्मृति में श्रीमाँ को अपनी भक्ति समर्पित की।

4 अप्रैल 1910 को श्री अरविंद ने पांडिचेरी प्रस्थान किया था। आश्रम में इस दिवस को अत्यधिक महत्वपूर्ण दिन के रूप में याद किया जाता है साथ ही श्री अरविंद आश्रम दिल्ली शाखा में इस दिन को आश्रम के 'तपस्या' भवन के स्थापना दिवस के रूप में भी मनाया जाता है।

आश्रम में इस दिन का प्रारंभ भगवती माँ के प्रातः कालीन आवाहन द्वारा किया गया, तत्पश्चात सभी लोग प्रसाद ब्लॉक में आयोजित प्रदर्शनी को देखने गए। संध्या 6:00 बजे तपस्या प्रांगण में तारा दीदी के द्वारा श्रीमाँ के वचनों का सस्वर पाठ हुआ तत्पश्चात श्री नील रंजन मुखर्जी ने हवाइन गिटार तथा श्री हिमांशु दत्त ने बाँसुरी वादन द्वारा जुगलबंदी से समां बांध दिया।

13 अप्रैल 2022 को वैशाखी पर्व के पावन अवसर पर श्रीमाँ को समर्पित करते हुए डॉक्टर अलंकार सिंह द्वारा शास्त्रीय़ गायन प्रस्तुत किया गया । कार्यक्रम में श्री संदीप सिंह जी ने दिलरुबा तथा श्री नरेंद्र पाल जी ने तबला वादन प्रस्तुत किया।

14 अप्रैल 2022 संध्या 7 से 8 बजे तक ध्यान कक्ष में गुरु वाणी की भक्ति पूर्ण प्रस्तुति ने सबको भक्ति-रस से सराबोर कर दिया।

24 अप्रैल- यह दिन श्री अरविंद आश्रम में श्रीमाँ के पांडिचेरी स्थायी आगमन के रूप में मनाया जाता है। इस आगमन के पश्चात श्रीमाँ जीवन-पर्यंत पांडिचेरी में रहते हुए श्री अरविंद के अतिमानसिक योग में साधनारत रहीं। यह दिन आश्रम के विशेष दिवसों में गिना जाता है । दिल्ली आश्रम में इस दिन का आरंभ ध्यान-कक्ष में माँ भगवती के आह्वान द्वारा किया गया, डॉ रमेश बिजलानी जी ने '**आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के प्रति श्रीमाँ के सुझाव**' विषय पर वार्ता प्रस्तुत की।

संध्या समय 6:15 बजे समाधि के प्रांगण में मार्च पास्ट के पश्चात ध्यान कक्ष में भक्ति संगीत के साथ तारा दीदी द्वारा 24 अप्रैल के प्रतीकार्थ संबंधित वाचन किया गया।

25 अप्रैल2022 सोमवार को दिल्ली आश्रम में **इंटीग्रल एसोसिएशन, कोलकाता** द्वारा विशेष कार्यक्रम प्रस्तुत किया गया जिसमें तारा दीदी को सम्मानित करते हुए श्री अरविंद के 150वें जयंती वर्ष के उपलक्ष्य में 'श्री अरविंद' विषय पर वार्ता प्रस्तुत की गई, साथ ही भक्ति संगीत भी प्रस्तुत किया गया।

24 मार्च करुणा दीदी का जन्म दिवस

25 मार्च (डॉक्टर रंजन कुमार द्वारा "वायलिन" वादन)

26 मार्च (पंडित सुरेंद्र राहुल "सितार वादन")

4 अप्रैल (तपस्या' भवन का स्थापना दिवस)

13 अप्रैल (वैशाखी पर्व)

14 अप्रैल (गुरु वाणी)

24 अप्रैल- (श्री अरविंद आश्रम में श्रीमाँ के पांडिचेरी पुनरागमन)

25 अप्रैल- (तारा दीदी को सम्मानित करते हुए इंटीग्रल एसोसिएशन कोलकाता द्वारा विशेष कार्यक्रम)